देखी सुनी

वर्ष 2009, अंक 8

प्रिय साथियों,

नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएं
इस बार के अकं में हम लेकर आए हैं जल जगंल और ज़मीन से जुड़े सवाल, हिंसा व उसका कानूनी पक्ष, किराए की कोख पर उभरता नजरिया, स्वास्थ्य व विकास, खाद्यान वितरण प्रणाली, सेना व महिला सशक्तिकरण और बुजुर्गो की देखभाल से जुड़े सवाल। आशा करते हैं आपका सहयोग, मार्गदर्शन, टिप्पणियां एवं सराहना हमें पिछले वर्ष की तरह इस वर्ष भी प्रेरित करते रहेंगे।

जागोरी संदर्भ समूह

वनों से बेदखल होते वनवासी

जल-जंगल-जमीन

रोमा और रजनीश

उत्तर प्रदेश के खीरी जिले के पलिया ब्लॉक में दुधवा राष्ट्रीय उद्यान एवं इसकी सीमा पर बसे 45 गांवों के लगभग पांच हजार परिवार बेघर होने के कगार पर हैं। यह तब हो रहा है, जब देश में अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत समुदाय (अधिकारों को मान्यता) कानून 2006 लागू हो चुका है। वन विभाग द्वारा आदिवासियों को उनके परंपरागत हक से वंचित किए जाने से न सिर्फ इस कानून का उल्लंघन हुआ है, बल्कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मिले सभी को सम्मानपूर्वक जीने एवं बसने के अधिकार से भी उन्हें वंचित किया गया है।

नेपाल से सटे पलिया ब्लॉक में स्थित इस पार्क क्षेत्र के इन सभी गांवों में ज्यादातर थारू आदिवासी बसे हुए हैं। और यह समुदाय इस जंगल क्षेत्र में पीढ़ियों से रहते हुए अपना जीवन-यापन करता चला आ रहा है। जितना यह समुदाय जंगलों से लेता था, उतना ही जंगलों को उनकी सुरक्षा के रूप में लौटाता भी था। आजादी से पहले अंगरेजी हुकूमत ने इन समुदायों के पारंपरिक सामुदायिक रिश्ते को सिलसिलेवार तरीके से खत्म किया और इनके हक-हुकूक को छूट में तबदील कर दिया। और अब वन विभाग ने इनके घरों के छप्पर के लिए दी जाने वाली फूंस को जलाकर इस छूट को भी खत्म करके इन समुदायों के साथ घोर अन्याय किया है।

गौरतलब है कि जंगल से प्राप्त होने वाली फूस, सेठा व बल्ली आदि से ये समुदाय अपना आशियाना तैयार करते हैं। साल भर की गरमी, सर्दी एवं चौमासे की बरसात के थपेड़ों की मार झेलते-झेलते वर्ष के अंत तक इन घरों की फूस खोखली हो जाती है। यह फूस जंगल से खागर, कांस, कुश (दाभ), भरहरा व बरही आदि जंगली घास से प्राप्त होती है। घरों के लिए फूस और ईंधन के लिए लकड़ी आदि लाने के एवज में वन विभाग आज भी सामंती प्रथा कायम रखे हुए है।

वन विभाग प्रत्येक आदिवासी घर से गल्ला लेता है, ताकि ये लोग उसके रहमोकरम पर जीते रहें। इस डर से कि वन विभाग कहीं उन्हें बेदखल न कर दे, प्रत्येक वर्ष एक क्विंटल अनाज, 60 किलो धान, पांच किलो सरसों का गल्ला एवं 300 रुपये नगद रिश्वत के रूप में इन्हें देना पड़ता है। इस अवैध वसूली के बावजूद फूस और जलावन की लकड़ी आदि देने में आना-कानी, इन दलित आदवासियों के साथ मारपीट, गलत मुकदमों में फंसाने एवं लकड़ी

इस बार फूस न मिल पाने से दुधवा पार्क में बसे इन आदिवासियों का कितना नुकसान होगा, इसका अंदाजा लगाना भी मुश्किल है

बीनने गई महिलाओं के साथ बदतमीजी व बलात्कार तक के मामले अकसर होते रहते हैं। अभी हाल ही में तकियापूर्वा गांव के जमालुद्दीन वहां के रेंजर, फॉरेस्ट गार्डों आदि ने जलावन की लकड़ी लाने के जुर्म में पीट-पीटकर हत्या कर दी। इस मामले में जांच के दौरान रेंजर दोषी पाए गए हैं तथा इस घटना पर अब सीबी सीआईडी जांच भी बैठ गई है। इस तरह से वन विभाग द्वारा यहां के गरीब तबकों का जीना बेहद कठिन कर दिया गया है।

दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि फूस के लिए जो जंगली घास आदिवासी एकत्र करके लाते हैं, उसे एक समय के बाद जंगल से काटा जाना बहुत जरूरी हो जाता है, क्योंकि अगर उस घास को नहीं काटा गया, तो वह जंगल की सेहत के लिए नुकसानदेह होती है। इसीलिए ग्रामीणों के घास ले जाने के बाद बची घास को जला दिया जाता है।

गौरतलब है कि इस वर्ष की शुरुआत में वनाधिकार कानून, 2006 को काफी जद्दोजहद के बाद लागू किया गया, जो वनाश्रित समुदायों के साथ हुए अन्याय की बात को स्वीकारता है। इस कानून में पहली बार वनाश्रित समुदायों के सामुदायिक-भूमि अधिकारों तथा जंगल में पाए जाने वाले लघु वनोपज और खेती, निवास आदि सहित वहां की जमीन पर मालिकाना अधिकार देने की बात कही गई है। यह वास्तव में एक ऐतिहासिक कानून है, जो उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार कानून के आगे की बात करता है। कानून की अगर व्याख्या की जाए, तो पिछले लगभग 150 वर्ष से जंगल पर कायम वन विभाग की जमींदारी लगभग उसके हाथ से निकल चुकी है।

इसीलिए मामला चाहे दुधवा पार्क में बसे थारू आदिवासियों को फूस न देने का हो या वनक्षेत्र से इन समुदायों की बेदखली का, इन सबके पीछे वन विभाग की मंशा साफ है। वह देश के जंगलों पर पिछले 150 साल से कायम अपनी सल्तनत को किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहता।

चूंकि नए वनाधिकार कानून के तहत अब विभिन्न स्तरों पर समितियों का गठन होना है और समुदायों द्वारा अपने हक के लिए दावे प्रस्तुत किए जाने हैं, इसलिए इससे पहले कि यह प्रक्रिया पूरी हो और जंगल पर वनवासी समुदायों का अधिकार स्थापित हो जाए, वन विभाग अधिक से अधिक समुदायों को जंगल से बेदखल कर देना चाहता है। फूस न मिल पाने से दुधवा पार्क में बसे इन आदिवासियों का कितना नुकसान होगा, इसका अंदाजा लगाना मुश्किल है। छप्परों पर पन्नी, टीन आदि डालकर वैकल्पिक व्यवस्था तो की जा सकती है, लेकिन इस व्यवस्था को कर पाने में भी आधे परिवार ही सक्षम होंगे। वे भी कर्ज लेकर। बाकी बचे परिवार साल के अंत तक न सिर्फ रहने के लिए अपनी छत खो देंगे, बल्कि घरों का सामान, रखा हुआ अनाज आदि से भी हाथ धो बैठेंगे।

(लेखक द्वय सामाजिक कार्यकर्ता हैं)

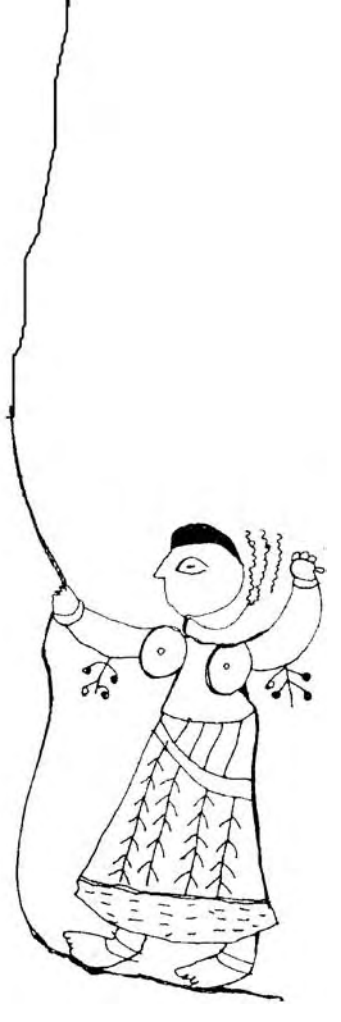

यौन हिंसा से कैसे मिले सुरक्षा

अंजलि सिन्हा

दिल्ली से सटे लोनी के महमदपूर गांव की तेरह वर्षीय छात्रा द्वारा किए गए आत्मदाह की ख़बर रौंगटे खड़े कर देनेवाली है। उपरोक्त छात्रा पड़ोस में अपनी चाची के घर से लौट रही थी, तब शाम साढ़े सात बजे दो युवकों ने उसे दबोच लिया तथा एक खाली बन्द कमरे में ले जाकर उन दोनों ने उसके साथ बलात्कार किया। बाद में लड़की ने घर पहुंचकर अपने को एक कमरे में बन्द कर लिया और खुद को आग लगा दी। परिजनों ने दरवाजा तोड़कर 70 प्रतिशत जली हालत में उसको बाहर निकाला। तब तक वह होश में थी। उसने पूरी आपबीती सुनायी। बाद में अस्पताल में 1 जून को उसने दम तोड़ दिया। दोनों आरोपी गिरफ्तार हो गये है लेकिन लड़की अब नहीं रही।

हरियाणा की रिंकल ने भी अपनी उम्र के 13 बसन्त ही देखे थे जब उसके चाचा ने उसके साथ बलात्कार किया। अपने मां-बाप के घर पर न होने की स्थिति में वह अपने चाचा के घर चली गयी थी, वहीं उसके साथ यह हादसा हुआ था। घटना के बाद रिंकल लगातार चुप रही और रोती रही। जब मां-बाप ने कारण पूछा तो उसने सब कुछ बता दिया। लेकिन पता नहीं क्या सोच कर मां-बाप ने केस दर्ज नहीं किया। पन्द्रह दिनों के बाद रिंकल की लाश नहर में मिली। तब कहीं जाकर अपराधी के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करायी गयी।

गतवर्ष के पुलिस के आंकड़े बताते हैं कि देश की राजधानी में हर पांचवे दिन एक बच्ची बलात्कार की शिकार होती है जिसकी उम्र 12 साल से कम होती है। जनवरी 2007 से अक्टूबर तक इस उम्र के वर्ग की साठ लड़कियों के साथ बलात्कार हुआ जिसमें अधिकतर मामलों में पड़ोसी या 'आत्मीयजन' शामिल थे। ओखला का एक पड़ोसी बारह साल की एक लड़की को डरा-धमकाकर काफी समय तक उसके साथ बलात्कार करता रहा। मामला तब खुला जब वह गर्भवती हो गयी।

इस तरह के यौन अपराध हर लड़की व औरत के लिये जीते-जी मरने के बराबर होता है। ऐसी घटना के बाद उसका सामान्य होना असम्भव ही होता है। विशेष तौर पर हमारे समाज में, जिसने यौन शुचिता की मजबूत दीवार महिलाओं के लिये खड़ी की है। इसके चलते महिलाएं स्वयं को कभी माफ नहीं कर पाती। बड़ी से बड़ी दुर्घटना वह सह सकती है मगर बलात्कार को दुर्घटना नहीं मान पाती हैं। पुरुष प्रधान मानसिकता ने ही ये दीवारें खड़ी की है। ।

छोटी उम्र की लड़कियां जो पूरी तरह अबोध होती हैं, जिन्होंने दुनिया को देखना अभी शुरू ही किया होता है, जिनमें मानवीय व्यवहार की समझ अविकसित होती है कि यौन हिंसा का अप्रत्याशित कहर उन पर बरस जाता है। आखिर ऐसे अपराधी पुरुषों में किस ग्रंथि का वास होता है कि वे किसी मासूम को अपनी हवस का शिकार बना डालते हैं? यह कहना गलत होगा कि वे किसी मानसिक विकार से ग्रस्त होते है। देखा गया है कि एकदम सहज, नॉर्मल व्यक्ति भी अपने होशो हवास में होता हुआ ऐसा अपराध करता है क्योंकि वह सोचता है कि वह बच्ची को डराने-धमकाने में सफल हो जायेगा और बच निकलेगा। अगर बारीकी से देखें तो बलात्कारी लोगों के मानसिक विकार से ग्रस्त होने की बात पितृसत्ता के संरक्षकों ने ही फैलायी है ताकि अपराध होने पर भी शेष समाज अपराधी के प्रति सहानुभूति जताए।

हमारा पारिवारिक-सामाजिक परिवेश लड़कियों को बचाने का उनकी सुरक्षा करने का प्रयास तो करता है लेकिन हादसे के प्रति उन्हें गंभीरता से आगाह नहीं करता है। बच्चियों को तैयार नहीं किया जाता है कि वे सही और नकली व्यवहार को समझ सकें। उन्हें सिर्फ यह बताया जाता है कि अकेले नहीं निकलो, रात को बाहर नहीं जाओ। कुछ बुरा हो सकता है। लेकिन वे अपने पड़ोस से कैसे बचें, घर में आने वाले मेहमानों से कैसे बचें, जानकार हो या अनजान उसे कैसे परखें। इन सबके बावजूद, अनहोनी हो सकती है, होती है। फिर भी, उन्हें सतक कराना ही होगा। दूसरे, अपराधी पर तुरन्त की गयी कार्रवाई यह सन्देश दे सकती है कि जो भी ऐसा करेगा वह बच नहीं सकता। त्वरित न्याय की गारण्टी जरूरी है। पीड़ित बच्चियों को सदमे से उबारने के लिये भी प्रयास होने चाहिए। लड़कों या पुरुषों में स्वस्थ मानसिकता का विकास हो, यह भी जरूरी है। हर व्यक्ति, छोटा या बड़ा स्त्री-पुरुष सभी के अधिकारों का सम्मान कर सके, ऐसी कोशिश करनी होगी। अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्तियों पर स्वयं नियंत्रण करना सीखना होगा। जो दूसरों को क्षति पहुंचाने वाला है उस पर लगाम लगाना उसे सीखना होगा। हर परिवार तथा समाज को यह जिम्मेदारी लेनी पड़ेगी। सरकार और प्रशासन तथा पुलिस को भी अपनी जिम्मेदारी सुनिश्चित करनी होगी कि अपराधी बेदाग बचने न पाये। यदि वह ठीक से अपनी जिम्मेदारी का वहन न करे तो इसके लिये भी सजा हो।

सच राष्ट्रीय स्तर पर 37 प्रतिशत महिलाएं घर में होती हैं प्रताड़ित, बिहार में 59 फीसदी

घरेलू हिंसा के मामले में बिहार का पहला स्थान

● एजेंसी

पटना। घरेलू हिंसा के मामले में बिहार अव्वल है। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की ओर से कराए एक सर्वे से इस बात का पता चला है। रिपोर्ट के मुताबिक बिहार में 59 फीसदी विवाहित महिलाएं घरेलू हिंसा की शिकार हैं। बताया गया है कि बिहार में घरेलू हिंसा की शिकार 59 फीसदी शादीशुदा महिलाओं में से 50 फीसदी महिलाओं के साथ मारपीट की जाती है जबकि 19 फीसदी महिलाएं यौन हिंसा की शिकार हैं। राष्ट्रीय स्तर पर घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं की औसत 37 फीसदी है। बिहार के बाद राजस्थान और मध्य प्रदेश संयुक्त रूप से दूसरे स्थान पर आते हैं यहां 46 फीसदी महिलाएं घरेलू हिंसा का शिकार हैं। तीसरा स्थान मणिपुर का है। इस राज्य में घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं की संख्या 44 फीसदी है। इसके बाद उत्तर प्रदेश और तमिलनाडु का नंबर है। इन दो राज्यों में यह संख्या 42 फीसदी है। इसके बाद पश्चिम बंगाल और असम में 40 फीसदी, अरुणाचल प्रदेश में 39 फीसदी और उड़ीसा में 38 फीसदी का नंबर है।

झारखंड में जनजातीय लोगों की अच्छी खासी संख्या है। इस राज्य में घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं की संख्या 35 फीसदी है। यह संख्या राष्ट्रीय औसत से भी कम है। केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा यह सर्वे बिहार में वर्ष 2006 में अप्रैल से जुलाई के बीच कराया गया। वर्ष 2005-06 में एनएफएचएस की एक रिपोर्ट में कहा गया था कि घरेलू हिंसा- अशिक्षा से संबंधित है। इसके तहत पाया गया है कि घरेलू हिंसा की शिकार 64 फीसदी महिलाएं अशिक्षित थीं। सर्वे में इस बात का खुलासा किया गया है कि बिहार में सिर्फ एक फीसदी महिलाएं ही अपने पति के खिलाफ हिंसा की शुरुआत करती हैं।

नहीं रुक रही लड़कियां घटने की रफ्तार

रोशन/सहारा न्यूज ब्यूरो
नई दिल्ली, 3 सितम्बर।

देश भले ही नौ प्रतिशत की रफ्तार से विकास कर रहा हो और समाज दकियानूसी छोड़ पाश्चात्य संस्कृति को अपना रहा हो लेकिन बेटियों को लेकर भारतीय समाज की सोच अब भी सदियों पुरानी है। बेटों को अब भी बेटियों के मुकाबले तवज्जो दी जा रही है।

सरकार को मिले जनसंख्या के ताजा अनुमानित आंकड़ों में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की गिरती संख्या रुकती दिख रही है। लेकिन कुछ राज्यों से मिली सूचना के मुताबिक लड़कियों की संख्या तेजी से गिर रही है। दमन एवं दीव में तो प्रति हजार लड़कों पर लड़कियों की संख्या गिरकर मात्र 620 रहने की आशंका जाहिर की गयी है।

दूसरे नंबर पर दादर एवं नागर हवेली है। यहां 2001 में प्रति हजार लड़कों पर 812 लड़कियां थीं जो अब घटकर 746 रह गयी है। केंद्र के जनसंख्या निदेशालय को जन्म एवं मृत्यु पंजीकरण कार्यालयों और जनसंख्या रफ्तार के अनुमान के आधार पर आंकड़े मिलते रहते हैं। अगली गणना 2011 में होनी है लेकिन सरकार को मोटे तौर पर अनुमानित आंकड़े प्राप्त हुए है।

मार्च 2008 तक की स्थिति में सरकार ने अनुमान लगाया है कि देश की जनसंख्या बढ़कर एक अरब, 11 करोड़ हो गयी है। इनमें 57 करोड़ 53 लाख पुरुष और 53 करोड़ 88 लाख महिलाएं हैं। यानि महिला और पुरुषों का अनुपात 2001 की जनगणना के 933 के मुकाबले 937 हो गया है। यानि पिछले आठ सालों में महिलाओं की संख्या बढ़ी है। यह अच्छी खबर है कि महिलाओं की संख्या प्रति हजार पुरुषों पर बढ़ी है लेकिन यह निराश करने वाली बात है कि कुछ राज्यों में लड़कियों की संख्या लगातार गिर रही है। दमन एवं दीव में भी वर्ष 2001 की जनगणना में प्रति हजार पुरुषों पर सबसे कम 710 महिलाएं थीं। इस बार यह संख्या और भी घटकर 620 रह गयी है। छत्तीसगढ़ में 2001 में प्रति हजार लड़कों पर 989 लड़कियां थीं जो अब घटकर 981 हो गयी है। मणिपुर, सिक्किम में लड़कियों की संख्या कम हुई है।

पंजाब, हरियाणा और चंडीगढ़ में लड़कियों का अनुपात लगातार घट रहा था लेकिन इस बार इस क्षेत्र में उत्साहबर्द्धक नजीते तो नहीं कह सकते हैं लेकिन संतोषजनक है कि लड़कियों की संख्या गिरी नहीं है। चंडीगढ़ में स्थिति स्थिर है यानि यहां भी लड़कियों का अनुपात 777 है। हरियाणा में यह औसत 862 और पंजाब में 864 है। दिल्ली में लड़कियों की संख्या लगभग स्थिर है। यहां लड़कियों का अनुपात 824 है। जम्मू-कश्मीर ने सबसे उत्साहवर्धक नजीते दिए हैं। यहां 2001 में प्रति हजार लड़कों पर 892 लड़कियां थी। इनकी संख्या 25 बढ़ गयी है। पूरे देश में मात्र केरल ही एक ऐसा राज्य है जहां लड़कियों का औसत लड़कों से अधिक है। यहां लड़कियों का अनुपात 1057 पाया गया है। जबकि तमिलनाडु में भी 993 पाया गया है। इन राज्यों को छोड़कर कोई भी राज्य 990 के ऊपर का आंकड़ा नहीं छू पाया।

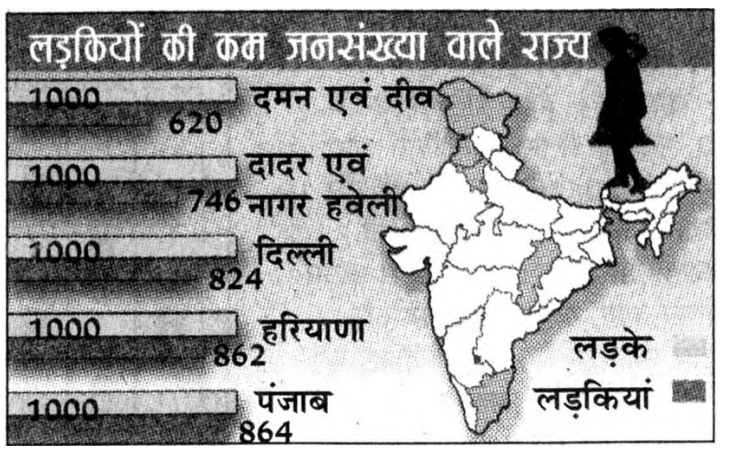

पश्चिम के समृद्ध शहरों में बेटियों से बेरुखी

● अजीत खरे

अमर उजाला विशेष

लखनऊ। बेटियों से बेरुखी के चलते पश्चिमी यूपी के समृद्ध शहरों में लड़कियों की तादाद कम हो रही है। इसके उलट आंकड़े बताते हैं कि अवध को बेटियों से प्यार है। यहां लड़कियों की संख्या बेहतर है। पश्चिमी यूपी में सेक्स रेश्यो के कम होने का मतलब है कि मादा भ्रूण की हत्या अधिक होती है। प्रदेश के चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग ने हाल ही में पीपीएनडीटी एक्ट (गर्भधारण पूर्व एवं प्रसव पूर्व निदान तकनीक लिंग चयन अधिनियम) के प्रावधानों की समीक्षा की तो पाया कि सेक्स रेश्यो के लिहाज से संवेदनशील दस शहरों में नौ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के हैं। इन शहरों में यह अनुपात 1000 पुरुषों पर 850 से 875 महिलाओं के बीच है, जबकि अपेक्षाकृत पिछड़े अवध के 11 जिलों में सेक्स रेश्यो 915 से 970 के बीच हैं। पश्चिम में भ्रूण हत्या के मामले भी ज्यादा सामने आए हैं। मसलन, पीपीएनडीटी एक्ट के तहत नर्सिंग होमों के खिलाफ चल रहे मुकदमों की समीक्षा की गई तो पाया गया कि इनमें से अधिकांश नर्सिंग होम पश्चिमी उप्र में ही है। अदालतों में लंबित 26 मामलों में से मेरठ के 11, सहारनपुर व आगरा के तीन-तीन, गाजियाबाद, बागपत के दो-दो, गौतमबुद्धनगर, मुरादाबाद के एक-एक नर्सिंग होम के हैं।

पश्चिम यूपी (प्रति एक हजार पुरुषों में)	सेक्स रेश्यो	मानव विकास सूचकांक
बागपत	850	0.62
गाजियाबाद	854	0.66
नोएडा	854	0.70
मेरठ	857	0.63
मुजफ्फरनगर	859	0.59

कानूनों में भी महिलाओं से भेदभाव

अनिल बंसल

नई दिल्ली, 14 सितंबर। आजादी के 61 साल बाद भी अगर महिलाएं अपने साथ भेदभाव की शिकायत करती हैं तो यह वाजिब ही है। व्यवहार में हिस्सेदारी के मामले में पुरुषों के बराबर नहीं पहुंच पाने की शिकायत को अगर छोड़ भी दें तो भी सरकारी कायदे-कानूनों का सौतेला नजरिया बेशक अखरने वाली बात है। आयकर कानूनों से लेकर बीमे की सुविधा तक के मामले में महिलाओं को असहज और अटपटी परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। बात बहू और बेटी को बराबर मानने की होती है पर कानून तक इसमें बाधक बने हैं।

आयकर कानून की बात करें तो कोई पिता अपनी बेटी को जितनी चाहे नकदी बतौर उपहार दे सकता है। भाई भी अपनी बहन को इसी तरह उपहार दे सकता है। पर सास या ससुर अपनी पुत्रवधू को इस तरह का नकदी उपहार नहीं दे सकते। देंगे तो उससे होने वाली आमदनी उन्हीं की आमदनी में गिनी जाएगी। पति भी अपनी पत्नी को नकदी उपहार नहीं दे सकता। देगा तो उस उपहार से पत्नी को हुई आमदनी पति की ही गिनी जाएगी। इस भेदभाव के चलते आमतौर पर न पत्नी को पति से ऐसे नकदी उपहार मिल पाते हैं और न सास या ससुर से।

बीमे के मामले में तो महिलाओं के साथ होने वाले सलूक पर किसी को भी शर्मिंदा होना चाहिए। बीमे के हर प्रस्ताव में महिला से कई बेतुके, बेहूदे और गैरजरूरी सवाल पूछे जाते हैं। मसलन, उसे पिछली बार मासिक धर्म कब हुआ, कभी गर्भपात तो नहीं हुआ और हुआ तो कब? वह गर्भवती है तो कितने माह की? अंतिम प्रसव कब हुआ था? उसने कोई आपरेशन तो नहीं कराया है?

एक बीमा कंपनी के अफसर ने इस बाबत सवाल पर सफाई दी कि बीमा कराने वाले व्यक्ति की सेहत के बारे में जानने का किसी भी बीमा कंपनी को अधिकार होना ही चाहिए। लेकिन यह अफसर महिला की सेहत के बहाने पूछे जाने वाले बेहूदा सवालों के औचित्य को सिद्ध नहीं कर पाया। पुरुष से भी बीमा करने से पहले उसकी सेहत के बारे में पूछा जाता है। पर यह पड़ताल बस इसी सवाल तक सीमित होती है कि उसे कोई गंभीर बीमारी तो नहीं है। इसी तरह की पड़ताल महिला के मामले में पर्याप्त क्यों नहीं हो सकती?

बीमा कंपनियों के दूसरे प्रावधान भी महिलाओं के साथ सौतेले सलूक के प्रमाण हैं। मसलन, पुरुष अगर बीमा कराना चाहे और उसकी कोई नियमित आमदनी नहीं हो तो भी एक सीमा तक उसका बीमा संभव है। मेडिकल जांच भी उसके लिए चार लाख रुपए तक के बीमे के लिए जरूरी नहीं है। पर नियमित आय नहीं रखने वाली महिला का बिना मेडिकल जांच के एक फूटी कौड़ी का भी बीमा नहीं हो सकता।

विधवा महिलाओं के साथ तो बीमा कंपनियां और भी ज्यादा क्रूरता का सलूक कर रही हैं। नवीं से कम पढ़ी विधवा महिला का बीमा हो ही नहीं सकता। जबकि पुरुष के लिए पढ़ाई की कोई बंदिश नहीं है। घरेलू महिला का बीमा तभी संभव है जब उसके पति का भी उतनी ही राशि का पहले से बीमा हो। अपनी खुद की आमदनी करने वाली जो महिलाएं आयकर रिटर्न दाखिल नहीं करतीं उनका भी बीमा नहीं किया जाता। ऐसी महिला अगर आठवीं पास हो तभी उसे अधिकतम एक लाख रुपए तक का बीमा कराने का अधिकार है।

जहां तक पदों के बंटवारे के मामले में महिलाओं की अपने साथ न्याय नहीं होने की शिकायत का सवाल है, वह भी बेमतलब नहीं कही जा सकती। सुप्रीम कोर्ट को ही लें, मुख्य न्यायाधीश सहित 25 जजों में इस समय एक भी महिला जज नहीं है। पूर्व में भी अभी तक दो ही महिलाएं सुप्रीम कोर्ट की जज बन पाई हैं। एक फातिमा बीबी और दूसरी रूमा पाल। विश्वविद्यालयों के कुलपतियों के मामले में भी उन्हें समानता के अधिकार से व्यवहार में वंचित ही रहना पड़ रहा है। यों शिक्षा क्षेत्र में महिलाओं की हिस्सेदारी शुरू से ही प्रभावी रही है। पर उन्हें कुलपति बनाने लायक फिर भी नहीं माना जाता। उत्तर प्रदेश की मिसाल दी जा सकती है। राज्य में डेढ़ दर्जन सरकारी विश्वविद्यालय हैं। पर किसी महिला को आज तक कुलपति नहीं बनाया गया। लखनऊ में रूपरेखा वर्मा और बरेली में बीना शाह को महज छह महीने की अवधि के लिए काम चलाऊ कुलपति जरूर बनाया गया था। पिछले महीने अलबत्ता लखनऊ में नए बने मेडिकल विश्वविद्यालय में जरूर एक महिला डाक्टर को कुलपति बनाया गया है।

मुआवजा नहीं, न्याय चाहिए?

आर्थिक लाभ के शोरगुल में कहीं न्याय पाने के मामले को गौण न बना दिया जाए। सबसे जरूरी है कि दोषी को सजा मिले। केस की सुनवाई जल्दी हो और न्यायिक प्रक्रिया संवेदनशील हो। यदि जर्मन विदेशी महिला के बलात्कार का शिकार होने पर कार्रवाई तुरंत हो सकती है तो बाकी मामले क्यों लटके रहते हैं।

अंजलि सिन्हा

देश में बलात्कार के बढ़ते मामले सरकार और पूरे समाज के लिए बड़ी चिन्ता का विषय बना हुआ है। राष्ट्रीय महिला आयोग में उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार हर साल बीस हजार महिलाएं बलात्कार की शिकार हो रही है। पीछे की तुलना में आंकड़ें बढ़े हैं। सभी को पता है कि ऐसे अपराध के असली आंकड़ें दर्ज मामलों की तुलना में कई गुणा अधिक होते हैं। ऐसी घटनाओं को हमारे समाज में छुपाया जाता है क्योंकि पीड़िता को लोकलाज का डर होता है। परिवार और समाज का दबाव होता है कि खानदान की बदनामी न हो। दूसरी तरफ पुलिस प्रशासन तथा न्यायव्यवस्था की खामियों के कारण केस ठीक से दर्ज नहीं होते या शुरुआती तफ्तीश में ही खारिज हो जाते हैं।

इसी के मद्देनजर पिछले कुछ समय से बलात्कार कानून को प्रभावी बनाने की बात चल रही है। इसके अलावा 'बलात्कार पीड़िता के आंसू पोंछने' को लेकर भी सुप्रीम कोर्ट अपनी चिंता जाहिर कर चुका है। मालूम हो कि कुछ समय पहले पीड़िता की सहायता के लिए प्रस्तावित योजना का मसविदा तैयार करने की जिम्मेदारी राष्ट्रीय महिला आयोग को सौंपी गई थी। आयोग ने मसविदा तैयार करके महिला एवं बालविकास मंत्रालय को सौंप दिया था जिसे अब मंत्रालय ने अपनी मंजूरी दे दी है। इस मसविदे में पीड़ित महिला का पुनर्वास तथा आर्थिक सहायता की बात की गई है। पीड़िता को दो लाख रुपए की सहायता राशि मंजूर की गई है। यह राशि केंद्र राज्यों को मुहैया कराएगा तथा इसे हर राज्य के हर जिले का जिलाधिकारी लागू करवाएगा। जिलाधिकारी के नेतृत्व में एक समिति का गठन होगा जिसमें अध्यक्ष के अलावा चार सदस्य होंगे। उनमें तीन महिला सदस्य होना जरूरी होगा। राज्य स्तर पर एक क्षतिपूर्ति बोर्ड का गठन राज्य सरकार करेगी। तथा राष्ट्रीय स्तर पर इसकी निगरानी राष्ट्रीय महिला आयोग करेगा। इसमें बलात्कार की परिभाषा भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अनुरूप ही होगी। सहायता राशि के लिए पीड़ित महिला को आवेदन करना होगा। आवेदन पत्र के साथ मेडिकल सर्टिफिकेट की कापी तथा यदि मृत्यु हो गई है तो मृत्यु प्रमाणपत्र संलग्न करना होगा।

यूं तो आर्थिक सहायता की बात गलत प्रतीत नहीं होती और किसी पीड़ित व्यक्ति को सहायता मिले तो इससे कोई क्यों इंकार करेगा, लेकिन हमारे समाज का जैसा वातावरण है उसमें उसका गहराई से विश्लेषण और उसके दूरगामी प्रभाव देखना जरूरी है। हमारे समाज में बलात्कार की शिकार महिला को देखने का नजरिया उसे कटघरे में खड़ा करने वाला है। मसलन वह फलां समय में फलां जगह अकेले क्यों गई, घटना के समय अपने बचाव के लिए उसने क्या किया, उसे बचाव करते समय चोट लगने का सबूत है या नहीं, बलात्कारी को वह पहले से जानती थी या नहीं आदि। इसी के साथ पीड़िताओं पर यह आरोप भी लगता रहा है कि उन्होंने निजी फायदे या आर्थिक लाभ के लिए आरोप लगाएं हैं। मेडिकल परीक्षणों को भी प्रभावित करने के प्रयास होते हैं। ऐसे में आर्थिक सहायता की बात का सहारा लेकर केस को कमजोर करने का प्रयास होगा। यह भी साबित करने की कोशिश होगी कि लाभ के लिए संबंध बनाकर कोर्ट को गुमराह किया जा रहा है।

कुछ साल पहले दिल्ली की आजादपुर मंडी और फिर हिंदू कॉलेज परिसर में एक किशोरी के साथ सामूहिक बलात्कार का मामला सामने आया था तब भी केस दर्ज न करने के लिए पुलिस ने कहा कि यह सब बस यूं ही हल्ला करते हैं। इसके लिए शहर में बलात्कार विरोधी फोरम का गठन हुआ और गृहराज्यमंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल के हस्तक्षेप के बाद केस दर्ज हुआ लेकिन बाद में, कारण जो भी रहा हो, पीड़िता ने अपना बयान बदल दिया और केस खारिज हो गया। यहां हम सोच सकते हैं कि अपराधियों के हौसले कैसे बुलंद हो सकते हैं।

हमारे पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने सामूहिक बलात्कार की पीड़ित मुख्तारन माई के लिए खुलेआम टिप्पणी की थी कि उन्होंने विदेशयात्रा के लिए ऐसा आरोप लगाया है। उदाहरण और भी मिल जाएंगे लेकिन प्रमुख बात यह है कि बलात्कार के खिलाफ सुनवाई अभी भी बहुत मुश्किल बनी हुई है। भंवरी देवी केस को लगभग 15 साल बीत गए लेकिन अभी भी सेशन कोर्ट के विपरीत फैसले के बाद सुप्रीम कोर्ट तक मामला आया ही नहीं है।

आर्थिक लाभ के शोरगुल में कहीं न्याय पाने के मामले को गौण न बना दिया जाए। सबसे जरूरी है कि दोषी को सजा मिले। केस की सुनवाई त्वरित (फास्ट ट्रैक कोर्ट) में हो और न्यायिक प्रक्रिया संवेदनशील हो। यदि जर्मन विदेशी महिला के बलात्कार के शिकार होने पर कार्रवाई तुरंत हो सकती है तो बाकी मामले क्यों लटके रहते हैं। पीड़िता के इलाज का, कानूनी कार्रवाई और पुनर्वास में जिन खर्चों की जरूरत हो उसे सरकार खुद वहन करे। लेकिन बलात्कार के बाद आर्थिक सहायता की घोषणा भ्रम पैदा कर देनेवाली होगी। इससे महिलाओं पर अधिक लांछन लगाया जाएगा। न सिर्फ उन पर जो पीड़ित है बल्कि उन सब पर भी जो इसके खिलाफ आवाज उठाती हैं।

यह भी विचारणीय है कि अन्य गंभीर अपराधों में भी मुआवजा राशि से मामले को रफा-दफा करने का प्रयास होता है। गुजरात नरसंहार में जो लोग बर्बर ढंग से मारे गए, जिन्होंने अपने आत्मीय जन को हमेशा के लिये खो दिया उनके दोषियों को नहीं पकड़ा गया लेकिन मुआवजे की बात हो रही है। भागलपुर दंगापीड़ितों को अभी तक न्याय नहीं मिला लेकिन उन्हें भी मुआवजा दिया गया। क्या न्याय पाने के सवाल को मुआवजे की राशि से कभी प्रतिस्थापित किया जा सकता है?

(लेखिका सत्यवती कालेज में काउंसलर हैं)

शादी के सात साल बाद भी मौत दहेज हत्या मानी जाए

राष्ट्रीय महिला आयोग ने दहेज हत्या संबंधी कानूनों में ढिलाई पर जताया विरोध।

त्रिभुवन. नई दिल्ली

राष्ट्रीय महिला आयोग ने केंद्रीय महिला और बाल विकास मंत्रालय को आईपीसी की दहेज मृत्यु संबंधी धारा 304 बी में अहम बदलाव सुझाते हुए विवाह के सात साल के भीतर का जुमला तत्काल हटाने को कहा है।

मंत्रालय ने आयोग के इस सुझाव पर सहमति के संकेत दिए हैं। इसका मतलब ये है कि अगर निकट भविष्य में किसी महिला की शादी के कितने ही साल बाद संदिग्ध परिस्थितियों में मृत्यु हो जाती है तो दोषी लोगों को इस धारा के तहत सजा दिलाई जा सकेगी और सात साल की शर्त का बहाना बनाकर दहेज हत्या के दोषी नहीं बच पाएंगे।

आयोग की अध्यक्ष डा. गिरिजा व्यास बताती हैं कि उनके सामने सभी प्रदेशों के आए दिन ऐसे मामले आते रहते हैं, जिनमें शादी के 10-10 साल बाद तक भी लोग दहेज के लिए विवाहिताओं पर जुल्म ढाते हैं और उनकी हत्या तक कर देते हैं। डा. व्यास के अनुसार जयपुर के एक

बढ़ रही हैं दहेज हत्याएं

वर्ष 2005 : 490
वर्ष 2006 : 394
वर्ष 2007 : 544

परिवार का तो ऐसा मामला था जिसमें ससुराल वालों ने बहू से शादी के दस साल से भी ज्यादा समय बाद तक कभी कार, कभी सोना, कभी नगद और कभी मकान तक की मांग की। इस प्रकरण को उन्होंने खुद हस्तक्षेप करके सुलझाया और बहू को अत्याचारों से मुक्ति मिली।

लड़के के जन्म पर उपहार मांगना भी दहेज

आयोग ने सुप्रीम कोर्ट सहित विभिन्न अदालतों के फैसलों पर विवाह के संबंध में या इन कनेक्शन विद मैरिज जैसे जुमलों पर भी आपत्ति जताई है। उनका कहना है कि इससे दहेज उत्पीड़न का दायरा सीमित किया जा रहा है। आयोग ने इन शब्दावलियों को हटाने की सिफारिश की है ताकि बेटे के जन्म, घर में मृत्यु या अन्य शादी-सगाई जैसे समारोहों के दौरान की जाने वाली मांगों को भी इस दायरे में रखा जा सके।

तो हो जाएगी दुल्हन के मां-बाप को भी सजा

आयोग के नए प्रस्ताव के अनुसार अगर किसी परिवार ने दहेज दिया है और यह साबित हो जाता है तो इस पर एक साल की सजा का प्रावधान होगा, जबकि दहेज मांगने वाले को पांच साल के लिए जेल जाना पड़ेगा।

क्या है धारा 304 बी?

यह धारा दहेज मृत्यु की परिभाषा देती है और दंड का प्रावधान करती है। अगर किसी महिला की संदिग्ध मृत्यु विवाह के सात साल के दरम्यान हो जाती है तो उसके साथ दहेज के लिए क्रूरता करने वाले पति, पति के नाते-रिश्तेदार को उसकी हत्या का जिम्मेदार माना जाएगा। इस धारा में दोषी के लिए सात साल तक की सजा का प्रावधान है।

महिला काजी ने कराया निकाह!

समाज में सुधार के लिए उठाया कदम

नाईस हसन और इमरान को निकाह पढ़ाया केंद्रीय योजना आयोग की सदस्य डा. सईदा हामिदा।

भास्कर नेटवर्क. लखनऊ

नवाबों के शहर लखनऊ में मंगलवार शाम संपन्न एक अनोखे निकाह में काजी की भूमिका एक महिला ने निभाई। निकाह संपन्न कराने वाली महिला काजी शिया समुदाय की और दूल्हा-दुल्हन सुन्नी थे। निकाह की गवाह भी महिलाएं ही थीं। मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के सदस्य और लखनऊ ईदगाह के नायब इमाम मौलाना खालिद रशीद फिरंगी महल ने इस निकाह को तमाशा करार दिया है।

दूसरी ओर, ऑल इंडिया मुस्लिम महिला पर्सनल बोर्ड की अध्यक्ष शाइस्ता अंबर ने निकाह को जायज करार देते हुए कहा है कि इस्लाम के 1400 सालों के इतिहास में ऐसा निकाह न कभी देखा गया, न सुना गया। यह निकाह था महिलाओं के हक की लड़ाई लड़ने वाली नाईस हसन और सामाजिक कार्यों से जुड़े अलीगढ़ विश्वविद्यालय से पीएचडी कर चुके इमरान का। दोनों को डॉ. सईदा हामिदा ने निकाह पढ़ाया। चार महिलाओं ने बतौर गवाह इस निकाहनामे पर दस्तखत किए। केंद्रीय योजना आयोग की सदस्य डॉ. हामिदा इसे बिल्कुल गलत नहीं मानतीं। उन्होंने कहा कि शरीयत में यह कहीं नहीं लिखा है कि महिलाएं निकाह नहीं करा सकतीं। परंपरागत तौर पर घर के बुजुर्ग भी निकाह की रस्म पूरी करते रहे हैं। डॉ. हामिदा ने इस निकाह में अपना बनाया हुआ निकाहनामा भी इस्तेमाल किया।

हालांकि हालिया मुस्लिम इतिहास में महिलाओं के काजी होने का उदाहरण नहीं मिलता है, लेकिन जानकारों का कहना है कि पैगंबर के समय में महिलाएं काजी और मुफ्ती हुआ करती थीं।

हसन ने कहा कि हमारे परिवार और स्थानीय धार्मिक नेताओं ने इस कदम का समर्थन किया है। उन्होंने कहा कि हम तरक्की की बात करते हैं और सभी काम मर्दों के खाते में रखे हुए हैं। धार्मिक कार्य न केवल इस्लाम में बल्कि सभी धर्मों में पूरी तरह मर्दों के खाते में रखे गए हैं। इस कदम का समर्थन कर रहे विद्वानों ने कहा कि हसन और उनकी दुल्हन का निकाह इस्लाम की मान्यताओं और रिवाजों के मुताबिक होगा। जाने माने शिया विद्वान और ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ के सदस्य कल्बे जव्वाल महिला काजी का समर्थन किया है। उन्होंने कहा कि इस बात में कोई बुराई नहीं है कि एक महिला काजी निकाह कराए। उन्होंने कहा कि यदि काजी की भूमिका अदा करने वाली महिला मर्द काजी के जितना ज्ञान रखती है तो उसपर ऐतराज नहीं होना चाहिए।

कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें कुछ ऐतराज है। इस्लाम के जानकार और और ईदगाह समिति फर्रुखाबाद के अध्यक्ष रियाज अहमद ने इस तरह के निकाह की वैधता पर सवाल खड़ा किया है। उन्होंने कहा कि महिला काजी की हैसियत क्या है? क्या उसे सरकार ने मंजूरी दी है।

बलात्कार पीड़िता की गवाही काफी

एजेंसी

नई दिल्ली, 17 जुलाई।

देश में बलात्कार के बढ़ रहे मामलों को देखते हुए सुप्रीम कोर्ट ने व्यवस्था दी है कि अगर पीड़ित की गवाही विश्वास योग्य है तो मेडिकल साक्ष्यों के अभाव में भी यह अभियुक्त को सजा दिलाने के लिए काफी है। एक फैसले में न्यायमूर्ति अरिजित पसायत और न्यायमूर्ति पी सदाशिवम की पीठ ने कहा कि किसी मामले में पीड़िता की जांच करने वाला डाक्टर अगर बलात्कार का कोई सबूत नहीं पाता है तब भी बलात्कार पीड़िता की गवाही पर विश्वास किया जा सकता है।

शीर्ष न्यायालय के अनुसार अभियुक्त को सजा देने के लिए पीड़िता की गवाही अदालत के लिए काफी है। अदालत ने इसका कारण बताया कि सामान्य स्थिति में बलात्कार की शिकार इस तरह के अपराध को बताना नहीं चाहती है। यहां तक कि वह अपने परिवार से भी इसे छुपाना चाहती है। बहुत कम स्थिति में वह लोगों और पुलिस के सामने यह बात बताती है। पीठ ने कहा कि भारतीय महिलाओं में इस तरह के अपराध को छुपाने की प्रवृत्ति होती है क्योंकि यह बात उनकी एवं उनके परिवार की प्रतिष्ठा से जुड़ी होती है। कुछ मामलों में ही पीड़िता और उसके परिवार के लोग थाने में जाकर प्राथमिकी दर्ज कराने का साहस दिखाते हैं।

अदालत के अनुसार अगर रिकार्ड में बताई गई परिस्थितियां यह उजागर करती हैं कि पीड़िता गलत तरीके से आरोपी को नहीं फंसाना चाहती तो सामान्य तौर पर अदालत को उसके साक्ष्य को स्वीकार करने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। मोतीलाल गादरिया की याचिका को खारिज करते हुए पीठ ने कहा कि अभियुक्त घिसेपिटे फार्मूले से चिपका नहीं रह सकता व पुष्टि करने वाले साक्ष्यों के लिए जोर नहीं दे सकता।

मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले के भुसौर गांव में पीड़ित गृहणी के साथ मोतीलाल गादरिया ने 17 जनवरी 2002 को तब बलात्कार किया था जब उसका पति घर से बाहर गया हुआ था। न्यायालय ने कहा कि बलात्कार सिर्फ शारीरिक उत्पीड़न नहीं होता है। यह पीड़िता के पूरे व्यक्तित्व को बर्बाद कर देता है।

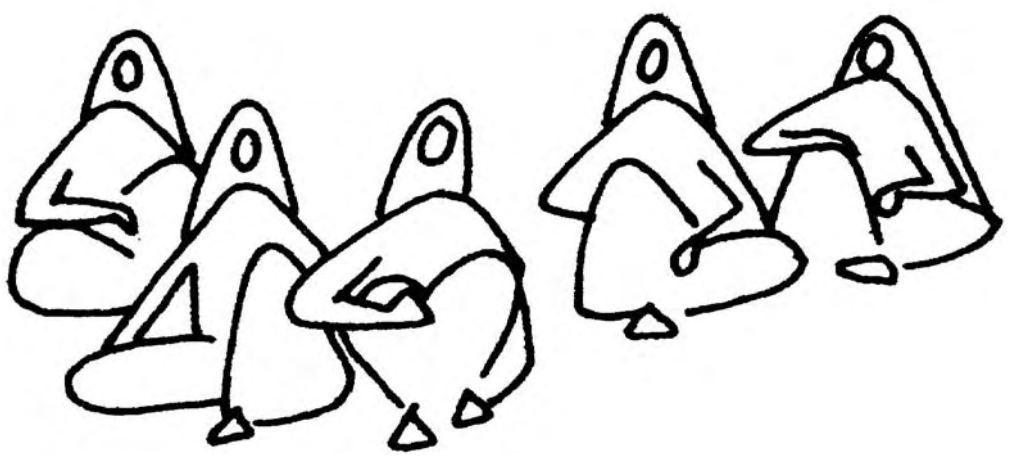

कोख किराए पर देने को मिलेगी कानूनी मान्यता

● केंद्र संसद के अगले सत्र में लाएगा विधेयक ● शर्तों के साथ होंगे दंड के प्रावधान ● सामाजिक कार्यकर्ता व्यापक चर्चा के पक्ष में

मयूरा जानवलकर. मुंबई

किराए पर कोख देने को शीघ्र ही कानूनी मान्यता मिलेगी। केंद्र सरकार इसके लिए संसद के अगले सत्र में एक विधेयक ला सकती है, जिसमें शर्तों के साथ दंड के भी प्रावधान हैं। इस विधेयक का मकसद देश में किराए पर कोख देने के मामलों पर नियंत्रण और निगरानी रखना है। वहीं, सामाजिक कार्यकर्ता इस विधेयक को कानून बनाने से पहले इस पर व्यापक चर्चा के पक्ष में हैं।

कृत्रिम प्रजनन प्रौद्योगिकी (विनियमन) विधेयक और नियम, 2008 का मसौदा केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय ने भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) के साथ मिलकर तैयार किया है। इसमें किराए पर कोख देने को कानूनी मान्यता देने का प्रावधान है।

पहले यह सुविधा बच्चा चाहने वाले दंपतियों के उन रिश्तेदारों तक सीमित थी, जो स्वेच्छा से अपनी कोख किराए पर देती थीं। साथ ही इन मामलों पर निगरानी के लिए कोई कानून भी नहीं था। इसके लिए आईसीएमआर ने कुछ दिशा-निर्देश जारी किए थे, लेकिन इनको बहुत कम ही अमल में लाया जाता था। ऐसे बहुत कम मामले सामने आए, जिसमें पैसे के लेन-देन के बिना कोख किराए पर दी गई थी। वर्तमान दिशा निर्देशों के तहत किराए पर कोख देने वाली महिला केवल अपने स्वास्थ्य की देखभाल के लिए पैसा ले सकती है।

सामाजिक कार्यकर्ताओं की चिंता

दूसरी ओर, इस विधेयक के मसौदे को आईसीएमआर ने हाल ही में दिल्ली में आयोजित किए गए एक कार्यक्रम में बच्चों और महिलाओं के अधिकारों के लिए काम करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं के समक्ष पेश किया था।

गुरुवार को इन लोगों ने एक प्रेस विज्ञप्ति जारी कर कहा कि इस कृत्रिम प्रजनन प्रौद्योगिकी (विनियमन) विधेयकमें इस तकनीक को उपलब्ध कराने वाले निजी क्षेत्र का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। महिला और बच्चे के स्वास्थ्य और अधिकारों की रक्षा के लिए इसमें पर्याप्त प्रावधान नहीं हैं।

विधेयक की मुख्य बातें

- किराए पर कोख देने वाली महिला बच्चा चाहने वाले दंपती से आर्थिक मुआवजा ले सकती है।
- इस काम के लिए महिला की उम्र 21 से ज्यादा और 45 वर्ष से कम होना जरूरी है।
- बच्चे को जन्म देने वाली महिला को शिशु पर पैतृक अधिकार त्यागने होंगे।
- कोई भी महिला तीन बार ही अपनी कोख किराए पर दे सकेगी।
- यह सुविधा लेने वाले दंपती को बच्चे के असामान्य होने पर भी उसे स्वीकार करना होगा।
- बच्चा लेने से इनकार करने पर इसे अपराध माना जाएगा।
- विदेशी दंपती किराए पर कोख देने वाली महिला की गर्भावस्था के दौरान देखभाल के लिए एक स्थानीय अभिभावक नियुक्त कर सकते हैं।

विधेयक में कमियां

- मेडिकल पर्यटन और महिला के स्वास्थ्य की कीमत पर व्यावसायिक फायदे को बढ़ावा मिलेगा।
- विधेयक के कारण महिलाओं और बच्चों के अधिकारों के साथ समझौता होगा।
- बच्चा गोद लेने के बजाए यह विधेयक महंगी तकनीक को बढ़ावा देगा।

कृत्रिम प्रजनन प्रौद्योगिकी (विनियमन) विधेयकमें इस तकनीक को उपलब्ध कराने वाले निजी क्षेत्र का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। महिला और बच्चे के स्वास्थ्य और अधिकारों की रक्षा के लिए इसमें पर्याप्त प्रावधान नहीं हैं।

नजरिया | रंजना कुमारी

किराये की कोख से पैदा हुए कई सवाल

जयपुर में किराये की कोख से पैदा हुई जापानी कन्या को लेकर जो स्थिति बनी है उसने 'सरोगेट' मदर की व्यवस्था को कठघरे में खड़ा करने के साथ-साथ इस मामले पर पुख्ता कानून बनाने की जरूरत को भी लक्ष्य किया है। 'किराए की कोख' के मसले पर कई गंभीर सवाल और चिंताएं हैं। हमारा जो सामाजिक ताना-बाना है, उसके सांचे में यह कितना फिट बैठता है, इस पर अब तक गंभीरता से विचार हुआ ही नहीं है। जापानी कन्या का मसला एक बानगी भर है। जोर तो किराए की कोख के आदर्श और वस्तुस्थिति पर है अन्यत्र कहीं नहीं।

किराए की कोख का मतलब है- शारीरिक रूप से अक्षम दंपत्ति द्वारा अपना बच्चा पैदा करने के लिए किसी महिला की गोद किराए पर लेना। इस विधि को विकसित करने के पीछे का मूल चिकित्सकीय उद्देश्य वैसी महिलाओं को राहत देना था जो शारीरिक अक्षमता के कारण मा नहीं बन पाती या जिनके लिए मां बनना स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से अहितकर है। इसका तरीका वही है जो टेस्ट ट्यूब बेबी पैदा करने का है। इस तकनीक को चिकित्सकीय भाषा में इन वाइट्रो फर्टिलाइजेशन (आईवीएफ) कहा जाता है। इसके तहत मां के डिंब और पिता के शुक्राणु का निषेचन प्रयोगशाला में किया जाता है, फिर निषिचित डिंब को किराए की मां की कोख में प्रत्यारोपित किया जाता है। फिर सब कुछ वैसा ही होता है जैसा आम गर्भावस्था में। ऊपरी तौर पर इस प्रक्रिया को अपनाने में कोई दोष नहीं है लेकिन हमारे देश में जिस तरह से इसका प्रयोग हो रहा है उसमें कई खामियां हैं। यहां पैसे के लोभ में किराए की मां बनने का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। पूरी दुनिया में किराए की मां बनने के पीछे मदद या सेवा भाव रहता है। न वहां पैसे की भूमिका होती है और न इसमें कोई बिचौलिया होता है। लेकिन यहां यह धंधे की तरह फल-फूल रहा है। बाकायदा इसके लिए विज्ञापन निकाले जाते हैं जिसका अंदाज उतना ही लुभावना होता है जितना आम उपभोक्ता सामग्री के विज्ञापन का।

सरोगेट मदर की व्यवस्था गरीब महिलाओं से मध्यम वर्ग के लिए एक वैकल्पिक आय के तौर पर उभरी है। प्रवासी भारतीय और विदेशी लोग भारत को इस मामले में एक बाजार मान कर चल रहे हैं। स्वास्थ्य मंत्रालय तथा भारतीय मेडिकल शोध परिषद द्वारा 2005 में इस संबंध में जो दिशानिर्देश तैयार किए गए थे उसका आज सरासर उल्लंघन हो रहा है। स्वास्थ्य मंत्रालय तथा महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा जिस नए कानून को बनाने की बात गत दो महीने से चल रही है उसमें भी कई खामियां हैं। कानून के मसौदे में सरोगेसी को सिर्फ उन रोगियों के लिए जायज माना गया है जिनके लिए चिकित्सकीय या शारीरिक रूप से बच्चा पैदा करना असंभव या अवांछनीय है। मसौदे में किराए की कोख देने वाली महिला को आर्थिक मुआवजे देने को भी जायज ठहराया गया है। अवांछनीय शब्द खासतौर से आपत्तिजनक है क्योंकि इससे सरोगेसी के मूल उद्देश्य पर ही चोट पहुंचती है।

> हमारे देश में पैसे के लोभ में किराए की मां बनने का प्रचलन तेजी से बढा है। पूरी दुनिया में किराए की मां बनने के पीछे मदद या सेवा भाव रहता है। न वहां पैसे की भूमिका होती है, न बिचौलिए की। लेकिन यहां यह एक धंधे की तरह फल-फूल रहा है। बाकायदा इसके लिए विज्ञापन निकाले जाते हैं

इससे उन लोगों के लिए किराए कोख पर लेने का रास्ता वैधानिक तौर पर खुल जाता है जो केवल अनिच्छा के कारण खुद अपनी कोख से बच्चे पैदा नहीं करना चाहते। फिर आर्थिक मुआवजा ऐसा पेच है जो धंधे की तरह इसे आगे बढ़ाने में 'पुश फैक्टर' की तरह कार्य कर रहा है। विदेशियों के लिए भारत की औरतों की कोख किराए पर लेना सस्ता पड़ता है किंतु एक आम भारतीय के लिए यह राशि बड़ी है। आज करीब 3 से 4 लाख रुपए तक इसके लिए मिल जाते हैं। फिर सरोगेसी के दौरान दवा इत्यादि के खर्चे भी मिलते हैं। लेकिन इस राशि को पाने के लिए कई कम उम्र की औरतें भी आगे आ रही हैं। वैसे सच्चाई यह भी है कि कुछ पढ़ी-लिखी सरोगेट मदर को छोड़ दें तो अधिकांश मां आर्थिक लाभ भी नहीं उठा पातीं। सारा पैसा तो बिचौलिए खा जाते हैं। फिर मातृत्व के लिए 21 से 45 वर्ष की आयु का दायरा भले तय कर दिया गया हो किंतु वस्तुस्थिति क्या है इसके लिए कोई निगरानी एजेंसी नहीं है। प्रस्तावित मसौदे में इस तकनीक के जरिए तीन बार मां बनने को जायज मानने की बात की गई है। किंतु गौर करने वाली बात है कि इस प्रक्रिया के तहत केवल 30 फीसद मामले ही सफल होते हैं। बाकी 70 फीसद मामले में गर्भपात कराना होता है। तीन सफल गर्भपात कराने के प्रावधान का मतलब है कि बीसों बार गर्भ धारण किया जा सकता है जो स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी खतरनाक है। फिर किराए पर कोख देने वाली मां के स्वास्थ्य और भविष्य की सुरक्षा के पर्याप्त प्रावधान पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। एक और बात पर गंभीर चिंतन जरूरी है कि क्या इस तरीके से संतान पाने की जगह बच्चा गोद लेने की प्रथा को बढ़ावा नहीं दिया जाए। आखिर अनाथों के साथ समाज का रवैया मानवीय हो और उन्हें भी पारिवारिक जीवन में शामिल किया जाए, इसके पक्ष में नीतियां बनाने पर कौन सी बाधाएं हैं।

मामला यहीं तक सीमित नहीं है। सरोगेट मदर से पैदा होने वाले बच्चे के बारे में पता चलने पर समाज का उसके प्रति व्यवहार क्या होगा? क्या सरोगेट मदर से पैदा हुए बच्चे को उसके अभिभावक भविष्य में भी वास्तव में अपना बच्चा मान उसके साथ दीर्घकालिक तौर पर अपनेपन का व्यवहार कर सकेंगे? यदि बच्चा लेने वाले दंपत्ति के बीच तलाक हो गया तो क्या होगा? बच्चे को उत्तराधिकार में क्या हासिल होगा? सरोगेट मदर के प्रति घर-परिवार व समाज का रवैया कैसा होगा? क्या सरोगेट मां भावनात्मक रूप से बच्चे से दूर हो पाएंगी? ऐसे प्रश्नों के जवाब खोजे जाने जरूरी हैं। यही नहीं, कई मामलों में समलैंगिक जोड़े भी अपने स्पर्म से पैदा हुए बच्चे चाह रहे हैं, जाहिर है इस सवाल का हल खोज लेना चाहिए क्योंकि आगे यह एक बड़ा मसला होगा। देश में अभी सरोगेट मदर के मसले को लेकर उहापोह की स्थिति है। इस संबंध में तमाम पहलुओं का अध्ययन कर ठोस कानून बनाया जाना चाहिए। स्वतंत्र रूप से विशेषज्ञों का एक दल गठित किया जाए जिसमें डाक्टरों, समाजशास्त्रियों, न्यायधीशों और महिला अधिकारों के लिए संघर्षरत लोगों को शामिल किया जाए। आखिर कोख के व्यवसायिक लेन देन को रोकने के लिए गंभीर कदम उठाने ही होंगे।

(लेखिका सेंटर फॉर सोशल रिसर्च की निदेशक हैं)

गर्भावस्था में हर वर्ष होती है पांच लाख महिलाओं की मौत

भास्कर नेटवर्क. नई दिल्ली

उचित इलाज के अभाव में गर्भावस्था के दौरान हर वर्ष दुनिया भर में पांच लाख से ज्यादा महिलाओं की मौत हो जाती है। गर्भावस्था के दौरान मौत पर हाल ही में जारी हुए यूनीसेफ की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि 99 फीसदी मौतें विकासशील देशों में होती हैं।

'प्रोग्रेस फॉर चिल्ड्रेन : ए रिपोर्ट कार्ड ऑन मैटर्नल मर्टिनिटी' नाम की इस रिपोर्ट में बताया गया है कि गर्भावस्था और प्रसव के दौरान होने वाली मौत का सबसे बड़ा कारण अति रक्तस्राव है। इस संबंध में यूनीसेफ के स्वास्थ्य विभाग के प्रमुख डॉ पीटर सालामा का कहना है कि मौत का कारण स्पष्ट है, इसके बावजूद इसे नहीं रोका जा रहा।

यूनीसेफ का लक्ष्य

यूनीसेफ का 1990 के मुकाबले वर्ष 2015 तक मातृत्व मौत में 75 फीसदी तक कमी लाने का लक्ष्य है। हालांकि इसमें कमी का वर्तमान दर सिर्फ एक फीसदी प्रति वर्ष है।

मौत के कारण

- सामान्य स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया नहीं हो पाना
- महिलाओं का खराब स्वास्थ्य
- सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति
- गरीबी, अशिक्षा व महिलाओं के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार
- संक्रमण, हाइपर टेंशन, बंधुआ मजदूरी, एचआईवी-एड्स
- प्रसव के लिए प्रशिक्षित नर्स या दाई का उपलब्ध न होना

रोकने के उपाय

- लड़कियों को शिक्षित करना
- महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा
- गर्भावस्था के दौरान डॉक्टर की नियमित सलाह व टीकाकरण
- लड़कियों को पोषक आहार दिया जाना
- दूरदराज इलाकों में स्वास्थ्य सेवाएं मजबूत बनाना
- बच्चे का जन्म अस्पताल में सुनिश्चित करना

> *'हम यह अच्छी तरह से जानते हैं कि जो माताएं बीमार हैं और जो मर गई हैं, उनके बच्चे छह माह तक मां का जरूरी दूध नहीं पाएंगे। ऐसे में उनका विकास भी प्रभावित होगा। इस बात का प्रमाण है कि ऐसे ज्यादातर बच्चे समय से पहले मौत को गले लगा लेते हैं।'*
>
> *—डॉ पीटर सालामा, प्रमुख स्वास्थ्य विभाग, यूनीसेफ*

किराए की कोख का बढ़ता कारोबार

जन्म से भारतीय पर बायोलॉजिकल तौर पर जापानी नन्हीं निष्पाप बच्ची कानून के कागजों के जंजाल में फंस चुकी है। जापानी गुड़िया ने दुनिया के सामने एक नया सवाल छोड़ दिया है। सरोगेट मां 9 दिन की बच्ची को छोड़कर चलती बनी क्योंकि उसका कांट्रेक्ट पूरा हो गया था। ठेके पर मातृत्व तलाशने वाले जापानी दंपति के बीच अब तलाक हो चुका है। मां उसे रखना नहीं चाहती और बाप उसे इसलिए नहीं अपना सकता क्योंकि यह तब तक कानून के मुताबिक नहीं है जब तक बच्चे की मां इसकी लिखित अनुमति न दे दे।

कैसे चयन होता है सरोगेट मां का

- सरोगेट मां ढूढ़ने वाले दंपति डाक्टर की सहायता से या फिर अखबारों में विज्ञापन देकर किराए की कोख ढूढ़ते हैं।
- चिकित्सीय जांच में यह सुनिश्चित किया जाता है कि सरोगेट मां के लिए प्रस्तावित महिला को कोई बीमारी न हो। एचआईवी इत्यादि के भी सभी परीक्षण होते हैं।

भारत एक खोज

सरोगेट मां की तलाश में दुनिया के तमाम दंपति भारत की ओर रुख कर रहे हैं।

- भारत में सरोगेट गर्भ का व्यय यूरोप से तकरीबन सात गुना कम है। भारत में कुल औसत व्यय ढाई लाख के आसपास बैठता है।
- मुख्य रूप से गरीबी के कारण कई महिलाएं आसानी से सरोगेट मां बनने के लिए तैयार हो जाती हैं।
- एक अनुमान के मुताबिक 2012 तक भारत में यह कारोबार 2.3 बिलियन डॉलर तक पहुंच जाएगा।

■ अरविंद खरे

करोड़ों रुपए बहाए फिर भी एड्स रोक न पाए

■ एचआईवी पॉजिटिव मरीजों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही

नीरज मिश्र
पश्चिमी दिल्ली, 26 अगस्त।

एड्स का नाम सुनते ही लोगों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस खतरनाक बीमारी की रोकथाम के लिए सरकार द्वारा करोड़ों रुपए खर्च हो रहे हैं लेकिन इस भारी-भरकम खर्च का असर इस बीमारी पर नहीं दिखता। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण एचआईवी पॉजिटिव मरीजों की संख्या में लगातार बढ़ोतरी से है। इस बात का खुलासा दिल्ली एड्स कंट्रोल सोसायटी के पिछले चार वर्षों के आंकड़े से होता है। विभाग के आंकड़ों पर नजर डालें तो बाहरी-पश्चिमी दिल्ली के अस्पतालों में लगातार एचआईवी पॉजिटिव मरीजों की संख्या बढ़ रही है। चौंकाने वाली बात यह है कि शहरीकृत क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक एचआईवी पॉजिटिव मरीजों की संख्या पाई गई।

बाहरी-पश्चिमी दिल्ली के कुछ प्रमुख अस्पतालों में पिछले चार वर्षों में एचआईवी पॉजिटिव मरीजों की बढ़ती संख्या से स्पष्ट है कि एड्स की रोकथाम के लिए किए जा रहे प्रचार-प्रसार लोगों के लिए बेकार साबित हो रहे हैं। रोहिणी स्थित अंबेडकर अस्पताल में इस वर्ष जुलाई माह तक तीन हजार लोगों की जांच की गई जिसमें डेढ़ सौ से अधिक एचआईवी पॉजिटिव मरीज पाए गए। जबकि 2007 में 5,641 लोगों की जांच की गई जिसमें डेढ़ सौ, 2006 में 7,883 लोगों की जांच की गई जिसमें मरीजों की संख्या लगभग चार सौ रही। यह हाल तब है जबकि इसकी रोकथाम के लिए शहरी क्षेत्र में प्रचार-प्रसार अधिक प्रभावी ढंग से किए जाते हैं। दिल्ली एड्स कंट्रोल सोसायटी के अफसरों का कहना है कि वर्तमान समय में 99 फीसद लोगों को एड्स के बारे में जानकारी है। लोगों को यह भी पता है कि यह रोग कैसे फैलता है लेकिन फिर भी गलती कर बैठते हैं।

अफसरों की माने तो लोगों की जांच प्रक्रिया पहले के मुकाबले अधिक सघन हो गई है। पहले के समय में कई लोग इसकी जांच नहीं करवाते थे लेकिन आज बाकायदा लोगों की काउंसिलिंग करवाई जाती है। क्योंकि इसकी जांच कराने से लोग कतराते हैं। लोगों की जांच में पाए गए मरीज़ों की औसतन संख्या लगातार घट रही है। उदाहरण स्वरूप पहले एक सौ लोगों की जांच में पांच एचआईवी संक्रमित मरीज पाए जाते थे जबकि आज एक हजार व्यक्ति की जांच में पांच मरीज पाए जाते हैं। एड्स की रोंकथाम के लिए मोबाइल वैन से गली-गली जाकर मरीजों की जांच करते हैं।

चार वर्षों के दौरान अस्पतालों में एडस के लिए हुई मरीजों की जांच

अस्पताल	2005	2006	2007	2008
अंबेडकर	8696	7883	5641	3000
बीजेआरएम	547	1991	3404	903
राजा हरीश चंद्र	39	659	2527	2537
महिर्षी बाल्मिकी	---	360	2690	1968
भगवान महावीर	---	---	1973	2305

चार वर्षों में अस्पतालों में मिले पोजिटिव मामले प्रतिशत में

अस्पताल	2005	2006	2007	2008
अंबेडकर	1.25	4.01	5.02	5.27
बीजेआरएम	6.95	9.02	2.35	6.64
राजा हरीशचंद्र	---	5.19	3.92	2.08
महिर्षी बाल्मिकी	---	4.07	2.03	1.77
भगवान महावीर	---	---	0.86	1.17

एड्स से बचाव में कारगर है यौन शिक्षा

आज समूचे विश्व में हरेक मिनट में 6 लोग एचआईवी से संक्रमित हो रहे हैं। ऐसी दशा में यौन शिक्षा की महत्ता समझने की जरूरत है।

■ ज्ञानेंद्र रावत

आज देश में भले ही यौन शिक्षा के सवाल पर बावेला मचा हुआ हो लेकिन यह सच है कि इसकी जरूरत को मद्देनजर रखते हुए अब ऐसी व्यवस्था की जा रही है कि आने-वाले समय में सह-शिक्षा वाले स्कूलों में लड़के-लड़कियों की एक सप्ताह में यौन शिक्षा की 30 मिनट की अलग-अलग कक्षाएं लगेंगी। इनमें पुरुष और महिला शिक्षक-शिक्षिकाएं यौन शिक्षा की जानकारियां देंगे। इस हेतु एक सेक्स एजूकेशन मैनुअल बनाया गया है। इसमें एचआईवी एड्स के फैलाव पर अंकुश लगाने के संबंध में कुछ ऐसे अहम सुझाव भी दिये गए हैं। नेशनल एड्स कंट्रोल ऑर्गनाइजेशन (नाको) की मानें तो आज समूचे विश्व में हरेक मिनट में 6 लोग एचआईवी से संक्रमित हो रहे हैं। ऐसी दशा में यौन शिक्षा की महत्ता समझने की जरूरत है। यह तभी संभव है जबकि सभी को इसकी रोकथाम के उपायों के बारे में

सही-सही जानकारी हो। मैनुअल के अनुसार कक्षा में शिक्षक-शिक्षिकाएं छात्र-छात्राओं से कुछ नई बीमारियों के नाम के बारे में पूछेंगे और इस दौरान जब छात्र-छात्राएं एचआईवी एड्स का नाम लेंगे, तब वह उनको इस वायरस की उत्पत्ति कैसे होती है, एसटीआई यानी सेक्सुअली ट्रांसमिटेड इन्फेक्शन क्या और कैसे होता है, इसके क्या लक्षण होते हैं, एड्स कैसे फैलता है, महिलाएं और बच्चे इससे कैसे जल्दी प्रभावित होते हैं, उनको इसका ज्यादा खतरा क्यों बना रहता है, किस तरह से इसका वायरस एक से दूसरे व्यक्ति के शरीर में पहुँचता है, इससे बचने के क्या-क्या उपाय हैं, क्या-क्या सावधानी बरतने से इससे बचा जा सकता है और क्या संयम इससे बचाव का सबसे कारगर उपाय है, की जानकारी देंगे। मैनुअल में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि वे दी गई जानकारियों के बारे में छात्र-छात्राओं से सवाल-जवाब भी करे ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि दी गई जानकारी से वे भली-भांति परिचित हो चुके हैं या नहीं। दरअसल यह सारी कवायद पिछले वर्ष जब नाको, यूनिसेफ, यूएनएड, यूएनएफआरपी, स्वास्थ्य और मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन एनसीईआरटी के सहयोग से स्कूली छात्रों की खातिर बनाई गई पाठ्य सामग्री को देश भर के स्कूलों में पढ़ाने का निर्देश दिया गया था तो देश में संस्कृति, परंपरा और परिवार की संस्था पर आघात मानने वाले राष्ट्र प्रेमियों द्वारा इसका जबरदस्त विरोध किया गया था, उसको ध्यान में रख की गई है। दुख इस बात का है कि इस मुद्दे पर केंद्र सरकार की मतैक्य बनाने की कोशिश बेमानी रही और जो राज्य पहले यौन शिक्षा के हिमायती थे और वहां यह लागू भी थी, वे भी विरोध में सामने आ गए। तब से लेकर आज तक यौन शिक्षा के विरोधी इस तरह के पाठ्यक्रम और इसे देश और सांस्कृतिक विरासत की रक्षा की लड़ाई बता कर इसका पुरजोर विरोध कर रहे हैं। उनका मानना है कि पश्चिमी सभ्यता की तर्ज पर बना यह सेक्स शिक्षा पाठ्यक्रम वीभत्स, घृणित और जुगुप्सा जगाने वाला है और सेक्स शिक्षा के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा एड्स का हौआ खड़ा कर भारत को बाइब्रेटिंग कंडोम व अन्य चीजें बेचने का बाजार बनाने की सोची-समझी साजिश है। सरकार सेक्स की उतेजना फैलाने के लिए सेक्स शिक्षा लागू करने का षडयंत्र कर रही है। जबकि प्रो. यशपाल की अध्यक्षता वाली एनसीएफ (नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क) ने खुलासा किया था कि किशोरें में सेक्स के प्रति बढ़ रही जिज्ञासा का समाधान करने के लिए उनकी प्रजनन और यौन संबंधी आवश्यकताओं पर ध्यान दिए जाने की जरूरत से जुड़े पाठ्यक्रम को स्कूली किताबों में शामिल किए जाने की सिफारिश की गई है। असलियत में सांस्कृतिक तौर पर संवेदनशील होने के बावजूद यौन या यौन जनित मुद्दों की जानकारी से बच्चों को वंचित रखने के कारण ही किशोरें में सेक्स के बारे में कई तरह की गलतफ़हमियां पैदा हो जाती हैं। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता।

यदि हम महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की मानें तो देश में 15 वर्ष से कम आयु के बच्चे हर 155 वें मिनट में बलात्कार के शिकार होते हैं, 10 वर्ष से कम आयु के बच्चे हर 13वें घंटे में और हर दस में से एक बच्चा कभी न कभी यौन शोषण का शिकार होता है। ।

यौन शिक्षा को धार्मिक व सांस्कृतिक मान्यताओं-परंपराओं व विरासत की दृष्टि से नहीं, समग्रता से देखने की जरूरत है। आज के दौर में जब फिल्मों, इलैक्ट्रानिक मीडिया, चैनलों, फैशन शो वे टीवी के माध्यम से नग्नता कहें या अश्लीलता घर-घर पहुंच चुकी है और उसे बच्चे, बूढ़े और जवान, मां-बेटे, भाई-बहन सभी एक साथ बैठकर देखते हैं। यह भी सच है कि सेक्स के बारे में प्राथमिक व्यावहारिक ज्ञान होने की स्थिति में ही एड्स, व्याभिचार, बलात्कार व यौन शोषण से जुड़ी गतिविधियों का मुकाबला किया जा सकता है। यह धर्म, संस्कृति व विरासत के ठेकेदारें, कुछेक राजनेताओं व सामाजिक संस्थाओं की समझ में क्यों नहीं आती। क्या अजन्ता, एलोरा और खजुराहो के मंदिरें पर उकेरे गए काम-कला संबन्धी चित्रों का उनके लिए कोई महत्व नहीं है और यदि है तो फिर उन्हें यौन शिक्षा का विरोध करने का कोई हक नहीं है। यदि कोई आपत्ति है तो उसका मिल बैठकर भावी पीढ़ी के भविष्य को दृष्टिगत रखते हुए कोई हल निकालना चाहिए।

(लेखक पत्रकार हैं)

'साथी' परियोजना देश भर में लागू करने पर विचार

जनसत्ता संवाददाता

नई दिल्ली, 23 अगस्त। विवाहित किशोरियों की सेहत पर खास ध्यान देने की जरूरत है। लिहाजा, सरकार महाराष्ट्र में इनके लिए चल रही सेफ एडॉलसेंट ट्रांजिशन एंड हेल्थ सर्विसेज (साथी) परियोजना को पूरे देश में लागू करने पर विचार कर रही है। पापुलेशन फाउंडेशन आफ इंडिया की ओर से हुई प्रेस कांफ्रेंस में यह जानकारी दी गई।

महाराष्ट्र में गांवों में 48.9 फीसद लड़कियों की शादी कम उम्र में कर दी जाती है। जबकि शहरों में यह औसत 28.9 फीसद है। इनके स्वास्थ्य पर इसका गलत असर पड़ता था। इसे देखते हुए स्वास्थ्य प्रबंधन संस्थान पैचॉड की ओर साथी परियोजना शुरू की गई थी। उसके नतीजों की सफलता को देखते हुए इसे देश भर में लागू करने की जरूरत पर बल दिया गया।

केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय सचिव अमरजीत सिन्हा ने कहा कि सेहत राज्य का मसला है। विवाहित किशोरियों के स्वास्थ्य को ध्यान में रख कर राष्ट्रीय स्तर पर कोई योजना नहीं है। इस लिए यह बेहतर होगा कि इस तरह की कोई नीति बने। जिसमें किशोरियों के स्वास्थ्य की व्यवस्था हो। उन्होंने कहा कि महाराष्ट्र में सफल रही इस परियोजना की राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत देश भर में लागू करने के दिशा- निर्देश दे सकती है। उन्होंने यह आश्वासन महाराष्ट्र के स्वास्थ्य सेवा सचिव डा. प्रकाश डोक की ओर से दिए साक्ष्यों के बाद दिया। डा डोर ने बताया कि साथी परियोजना शुरू करने के बाद पता चला है कि सही जानकारी और सलाह देकर मातृत्व मृत्युदर, प्रसव के बाद होने वाली मौत और कम आयु में गर्भधारण करने से होने वाली दिक्कतें कम की जा सकती हैं। इस तरह की जानकारी से व्यक्ति और उसके घरवालों के व्यवहार में भी बदलाव लाया जा सकता है।

उन्होंने बताया कि महाराष्ट्र में 50 लाख प्रजनन में से 26 फीसद हिस्सा किशोरियों का है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के हिसाब से 10 से 19 साल की लड़कियां किशोर आयु की होती हैं। उन्होंने कहा कि देश में राष्ट्रीय युवा नीति है। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन में थोड़ा बहुत इस समूह को कवर किया जाता है लेकिन इसके लिए अलग से कोई नीति नहीं है। जो व्यवस्था है वह नाकाफी है।

उन्होंने बताया कि साथी योजना लागू होने से लड़कियों के ब्याह 16 की बजाय 17वें साल में होने लगे। पहला गर्भधारण करने की आयु भी 17 साल से बढ़ कर 18 साल हो गई। इसकी वजह से कम वजन के पैदा होने वाले बच्चों की दर में कमी आई। जहां पहले 35 फीसद बच्चे कम वजन के होते थे, वहीं अब 25 फीसद बच्चों के ही वजन कम होते हैं। जबकि शहरी इलाकों में यह फीसद 27.5 से घट कर 18.8 फीसद हो गया। इस परियोजना से गर्भ निरोधक का प्रयोग भी बढ़ा है। जानकारी बढ़ने से किशोरियों में जननांग में संक्रमण दर में भी कमी आई है। पापुलेशन फांडेशन की अतिरिक्त निदेशक कुमुधा अरूल्दास ने कहा कि किशोरियों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर नीति बनानी बहुत जरूरी है इसी मकसद से गुरुवार को यह कार्यशाला की गई।

जल के जरिए बहता जहर

देश के कई राज्यों के जल में आर्सेनिक की मात्रा खतरे की सीमा से ऊपर है। राजस्थान में फ्लोराइड की मात्रा बहुत ज्यादा है। बंगाल का मुर्शिदाबाद जिला आर्सेनिक प्रदूषण में दुनिया का नंबर वन बन गया है। बिहार की हालत भी इस मामले में चिंताजनक ही है। देश के करीब छह करोड़ 20 लाख लोग फ्लोराइड प्रदूषण की चपेट में हैं।

कुमार विजय

> स्वच्छता और शुद्ध पेयजल की उपलब्धता 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती है इसका सामना सिर्फ सरकारी स्तर पर नहीं हो सकता है।

प्रदूषित पानी पीने से होने वाली बीमारियों के कारण दुनियाभर में रोजाना 4,000 लोगों की मौत हो जाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के रिपोर्ट के मुताबिक इस साल प्रदूषित पानी पीने से होने वाली बीमारियों के कारण 16 लाख लोग काल के गाल में समा जाएंगे। अगर भारत की बात करें तो सालाना होने वाली कुल मौतों में 7.5 फीसदी मौतें, प्रदूषित पानी, सैनीटेशन और स्वच्छता के अभाव के कारण होती है। यानी हर साल 7 लाख 80 हजार लोग इन तीन कारणों से काल का ग्रास बन जाते हैं। इसमें से करीब 3 लाख 90,000 लोग अतिसार की बीमारी जैसे कोलरा, टाइफाइड और पेचिश के कारण जिंदगी से हाथ धो बैठते हैं। जीवन के लिए अमृत माना जाने वाला जल उनके लिए जहर बन जाता है और मौत ले आता है। देश की बड़ी आबादी, 55 से 60 फीसदी लोगों का जीवन आज भी भूजल पर आश्रित है। ग्रामीण इलाकों में तो 90 फीसदी लोगों का जीवन भूजल पर आश्रित है। लेकिन देश के करीब 200 जिलों के भूजल में फ्लोराइड और आर्सेनिक की मात्रा उचित सीमा से ज्यादा मौजूद है। केंद्रीय भूजल बोर्ड के एक अध्ययन के मुताबिक भारत के एक-तिहाई जिलों का भूजल प्रदूषित है।

फ्लोराइड और आर्सेनिक की अधिकता वाले पानी के उपयोग से कई तरह के रोग हो सकते हैं। जहां पानी में फ्लोराइड की मात्रा अधिक होती है, वहां लोगों के दांतों में पीलापन आ जाता है। आर्सेनिक की मात्रा अधिक होने से लोगों को त्वचा, फेफड़ों और किडनी का कैंसर हो सकता है। केंद्रीय भूजल बोर्ड के मुताबिक 19 राज्यों के 184 जिलों के भूजल में फ्लोराइड की मात्रा उचित सीमा 1.5 मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक है। दूसरी ओर देश के चार राज्यों के 26 जिलों के भूमिगत जल में आर्सेनिक की मात्रा उचित सीमा 0.01 मिली ग्राम

प्रति लीटर से अधिक है। राजस्थान के 32 जिलों को फ्लोराइड का खतरा है। इस मामले में राजस्थान सबसे ऊपर है। जबकि गुजरात के 18 और उड़ीसा के 18 जिले इस खतरे की सूची में शामिल हैं। अगर भूजल में आर्सेनिक की अधिक मात्रा की बात करें तो पश्चिम बंगाल की मुर्शीदाबाद जिले के भूजल में दुनिया में सबसे अधिक आर्सेनिक की मात्रा उपलब्ध है। वैसे इस मामले में बिहार की हालत अधिक चिंताजनक है। क्योंकि यहां के 12 जिलों के भूजल में आर्सेनिक की मात्रा उचित सीमा से अधिक है। इसके बाद आता है पश्चिम बंगाल के आठ जिले। इसके भूजल में आर्सेनिक जरूरत से ज्यादा है।

हमारे देश में करीब 6 करोड़ 20 लाख लोग पानी में फ्लोराइड की अधिक मात्रा के कारण उत्पन्न होने वाली बीमारियों से ग्रसित है। देश में सबसे पहले 1937 में आंध्रप्रदेश के प्रकाशम जिला के भूमिगत जल में फ्लोराइड की मात्रा अधिक होने की खबर आई थी। तब से अब तक पर्यावरण विशेषज्ञों के मुताबिक फ्लोराइड और आर्सेनिक के कारण होने वाली समस्याओं में बढ़ोतरी हो रही है।

दूसरी ओर आंध्रप्रदेश बिहार, दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, तमिलनाडु, राजस्थान, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश के कई जिलों के भूमिगत जल में नाइट्रेट की मात्रा उचित सीमा 45 मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक है। पानी में नाइट्रेट की मात्रा अधिक होने से वह नवजात बच्चों की सेहत पर विपरीत प्रभाव डालता है। नाइट्रेट मां के दूध द्वारा बच्चे के शरीर में चला जाता है और शरीर को नीला कर देता है। इसका मतलब है कि बच्चे की शरीर में आक्सीजन की मात्रा कम पड़ गई है। इसे 'ब्लू बेबी सिंड्रोम' कहा जाता है। साथ ही असम पश्चिम बंगाल उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और कर्नाटक के एक से अधिक वास स्थानों के हैंड पंप के पानी में लोहे की मात्रा उचित सीमा 49 मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक है। भुवनेश्वर के हैंड पंप के पानी में भी लोहे की मात्रा उचित सीमा से अधिक पाया गया। वैसे फ्लोराइड और आर्सेनिक के तरह पानी में लोहे की अधिक मात्रा स्वास्थ्य पर तत्काल कोई विपरीत प्रभाव नहीं डालता है। लेकिन जिस पानी में लोहे की मात्रा अधिक होती है, वह पानी जल्दी सड़ जाता है। अब सवाल उठता है कि जल के इस तरह प्रदूषित होने की क्या वजहें हैं और इसका समाधान क्या है? मिट्टी से आने वाले प्रदूषण से निजात पाना मुश्किल है क्योंकि मिट्टी में जिस तत्व की मात्रा जिस अनुपात में उपलब्ध है, उसी अनुपात में वह भूमिगत जल में घुल जाता है। इस समस्या से निजात पाने का एक ही उपाय है कि भूजल के उपयोग से बचा जाए और भूमि के ऊपर पाए जाने वाले जल का उपयोग किया जाए। इसके लिए वर्षा जल का संरक्षण एक बेहतर विकल्प हो सकता है।

दूसरा विकल्प यह हो सकता है कि भूमिगत जल को 'रिवर्स ऑस्मोसिस'' की प्रक्रिया से शुद्ध करने के बाद ही पीने के इस्तेमाल में लाया जाए। इस प्रक्रिया के तहत पंजाब के गिद्दरबाहा सब डिवीजन के 42 गांवों में पानी को शुद्ध किया जाता है। इस परियोजना से शुद्ध जल घरेलू उपयोग के लिए 10 पैसे लीटर और व्यवसायिक उपयोग के लिए 15 पैसे लीटर उपलब्ध होता है। एक तरह से यह महंगा भी नहीं है। इसलिए देश के जिन 26 जिलों के भूमिगत जल में आर्सेनिक की मात्रा उचित सीमा से अधिक है, वहां प्राथमिकता के आधार पर लोगों को पीने लायक पानी मुहैया कराया जाए। वैसे भारत में जहां खराब पानी के कारण 7.5 फीसदी लोग मरते हैं वहीं श्रीलंका में यह अनुपात 1.9 फीसदी, सिंगापुर में यह अनुपात 0.2 फीसदी और क्यूबा में 0.6 फीसदी है। लेकिन इस मामले भारत की स्थिति बांग्लादेश, चीन और पाकिस्तान की तुलना में बेहतर है।

स्वच्छता और शुद्ध पानी की उपलब्धता 21वीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती है। इसका सामना सिर्फ सरकारी स्तर पर नहीं किया जा सकता।

(लेखक पत्रकार हैं)

मुद्दा

रामेन्द्र सिंह चौहान

गरीबों का खाद्यान्न डकारता माफिया

इसे खाद्य एवं आपूर्ति विभाग का कुप्रबंधन या अव्यवस्था ही कहा जायेगा कि देश के करोड़ों गरीबों का राशन माफिया या दबंग डकार जाते हैं। राजधानी दिल्ली में ही करीब पौने दो लाख फर्जी राशन कार्डो के माध्यम से माफिया लाखों गरीबों का राशन डकार गया। इस बदइंतजामी का आलम यह है कि दिल्ली की एक ही महिला के नाम नौ सौ से अधिक राशन कार्ड विभाग ने जारी कर दिये। जांच पड़ताल में मामला खुला तो राशन दुकानदार दुकान में ताला ड़ाल कर भाग गया। स्थिति यह है देश के 63 फीसदी बच्चों को भरपेट भोजन नसीब नहीं है। खाद्यान्न की उपलब्धता होने के बावजूद देश के इन गरीब बच्चों को खाद्यान्न नहीं मिल पाता। एक तरफ इस वर्ष देश में 2306 लाख टन खाद्यान्न उत्पादन हुआ, वहीं भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में वर्ष 1997 से 2007 एक दशक की अवधि में दस लाख टन से भी अधिक खाद्यान्न सड़ गया। करोड़ों रुपये मूल्य के इस खाद्यान्न से देश के एक करोड़ गरीबों का पेट लगातार एक वर्ष तक भरा जा सकता था। इतना ही नहीं, सड़े खाद्यान्न को निस्तारित करने के लिए भारत सरकार को 2.59 करोड़ रुपये की भारी भरकम धनराशि साफ-सफाई व अन्य इंतजामों में अतिरिक्त खर्च करनी पड़ी।

खाद्यान्न सड़ने की यह स्थिति तब है जब इसके संरक्षण पर भारत सरकार सालाना 245 करोड़ से कहीं अधिक धनराशि खर्च करती है। इतनी बड़ी धनराशि खर्च होने के बावजूद एक दशक की अवधि में 1.83 लाख टन गेंहू, 3.95 लाख टन चावल, 22 हजार टन धान व 110 हजार टन मक्का सड़ गया। इसमें खास बात यह रही कि उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, हरियाणा, जम्मू कश्मीर, पंजाब, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश व दिल्ली में ही सर्वाधिक 7 लाख टन से अधिक खाद्यान्न सड़ कर कचरे में तब्दील हो गया। देश में खाद्यान्न सड़ने व मंहगाई के चरमोत्कर्ष ने गरीब की थाली से निवाला छीनने का काम किया है। करीब दस माह के दौरान खाद्यान्न व खाद्य पदार्थो की कीमतों में साठ फीसद से भी अधिक की अप्रत्याशित वृद्धि हुई जिससे घर गृहस्थी के खर्चो का ढांचा चरमरा गया। केवल भारत ही नहीं, दुनिया के 78 देशों के 7.30 करोड़ लोगों को भोजन में कटौती करनी पड़ रही है। भोजन की इस कटौती से कुपोषण की समस्या बढ़ेगी। भारत सरकार गरीबों को सस्ता खाद्यान्न उपलब्ध कराने के साथ साथ उनके स्वास्थ्य सेहत के लिए भी चिंतित है ताकि कुपोषण की समस्या न आने पाये लेकिन नीतियों की खामियां गरीब की थाली तक सस्ता भोजन (खाद्यान्न) नहीं पहुंचने देती लिहाजा गांव गिरांव का गरीब कुपोषण का शिकार हो रहा है।

सवा अरब की आबादी का आंकड़ा पार कर चुके इस देश में गरीबों की आबादी का एक बड़ा हिस्सा सस्ता खाद्यान्न पाने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली की व्यवस्था पर निर्भर है लेकिन सस्ता खाद्यान्न उपलब्ध कराने की सुविधा देने वाले बीपीएल राशन कार्ड कहीं गरीबों को नहीं मिले तो कहीं गरीबों के बजाय अमीरों का थमा दिये गये। गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले सात करोड़ परिवार भारत सरकार की सार्वजनिक वितरण प्रणाली के दायरे में शामिल हैं लेकिन राज्यों ने दस करोड़ से अधिक परिवारों को बीपीएल (गरीबी रेखा से नीचे) के राशन कार्ड जारी कर दिये। जब जांच पड़ताल की गयी तो गरीबों के ये बीपीएल राशन कार्ड आर्थिक रूप से सम्पन्न परिवारों के हाथों में मिले।

जांच पड़ताल के बाद केवल दिल्ली में हीं चौदह लाख से अधिक बीपीएल राशन कार्ड खारिज किये गये थे लेकिन फर्जी राशन कार्डो का यह सिलसिला अभी तक थमा नहीं। अब तक सर्वाधिक (24.87 लाख) फर्जी राशन कार्ड मध्य प्रदेश में तथा आन्ध्र प्रदेश में (10.46 लाख) में खारिज किये गये। दो वर्षो के दौरान देश के तेरह राज्यों में 67.45 लाख राशन कार्ड खारिज किये जा चुके हैं। जांच पड़ताल में कानपुर में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले 3.02 लाख गरीब परिवार चिन्हित किये गये थे लेकिन इनमें से केवल एक लाख परिवारों के ही हाथों मे बीपीएल राशन कार्ड हैं।

अब गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले गरीब परिवारों को स्वास्थ्य सेवायें उपलब्ध कराने के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना का खाका खींचा गया है। इसके लिए भारत सरकार गरीब परिवारों को स्मार्ट कार्ड जारी करेगी। स्मार्ट कार्ड धारक गरीब परिवार निजी अस्पताल में अपना इलाज करा सकेंगे। इलाज की यह धनराशि तीस हजार रुपये सालाना निर्धारित की गयी है। इसमें परिवार के पांच सदस्य निजी अस्पताल में उपचार करा सकेंगे। लेकिन बीपीएल राशन कार्डो की धांधली से जाहिर है कि भारत सरकार की इन स्वास्थ्य सेवाओं का कितना लाभ वास्तविक गरीबों को मिल सकेगा यह गरीबों की सेहत व स्वस्थ जीवन खुद ब खुद भविष्य में बयां करेगा।

बीपीएल परिवारों से तीन करोड़ की रिश्वत वसूली

82 हजार परिवारों को पिछले एक साल में अपनी मूलभूत एवं जरूरी सेवाएं प्राप्त करने के लिए तीन करोड़ रुपए की रिश्वत देनी पड़ी।

ट्रांसपैरेंसी इंटरनेशनल इंडिया सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज की अध्ययन रिपोर्ट भारत में भ्रष्टाचार अध्ययन 2007 में यह तथ्य उजागर हुआ है।

एजेंसी: नई दिल्ली

देश की राजधानी के स्लम में गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे 82 हजार परिवारों को पिछले एक साल में अपनी मूलभूत एवं जरूरी सेवाएं प्राप्त करने के लिए तकरीबन तीन करोड़ रुपए की रिश्वत देनी पड़ी। यह चौंकाने वाला तथ्य उप राष्ट्रपति मुहम्मद हामिद अंसारी द्वारा यहां जारी एक रिपोर्ट में सामने आया है।

29 जून को जारी ट्रांसपैरेंसी इंटरनेशनल इंडिया सेंटर फार मीडिया स्टडीज के एक अध्ययन रिपोर्ट भारत में भ्रष्टाचार अध्ययन 2007 में यह तथ्य उजागर हुआ है। रिपोर्ट में कहा गया दिल्ली में गरीबी रेखा के नीचे रह रहे चार लाख 57 हजार परिवारों में 82 हजार परिवारों को पिछले साल अपनी मूलभूत एवं जरूरी सेवाओं को प्राप्त करने के लिए दो करोड़ 96 लाख रुपए की रिश्वत देनी पड़ी। इसमें बताया गया कि सर्वेक्षण के एक भाग के रूप में 11 सरकारी सेवाओं का चयन किया गया है, जिसमें पुलिस में सबसे अधिक भ्रष्टाचार पाया गया है। यह बात सर्वेक्षण के लिए चुने गए लोगों में से 70 प्रतिशत ने कही है।

270 परिवारों को पुलिस सेवा पाने के लिए देनी पड़ी रिश्वत

सर्वेक्षण के लिए चुने गए 600 परिवारों में से 270 परिवारों को पुलिस सेवाएं पाने के लिए रिश्वत देनी पड़ी या किसी संपर्क की सहायता लेनी पड़ी। यह रिश्वत शिकायत दर्ज कराने या यातायात नियमों का उल्लंघन करने पर हल्का दंड पाने जैसे विभिन्न रियायतों को पाने के लिए दी जाती है। राजधानी की बैंकिंग सेवाओं में सबसे कम भ्रष्टाचार पाया गया।

राजधानी में 23 लाख लोग गरीबी रेखा के नीचे

रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली में वर्तमान समय में 23 लाख लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे है। इनमें आधे से अधिक ऐसे लोगों की संख्या है, जो पूरी तरह योज्ञता के पात्र हैं, फिर भी उनके पास बीपीएल कार्ड नहीं है। लेकिन, इसके साथ ही मजेदार तथ्य यह है कि बीपीएल कार्डधारियों में सात प्रतिशत ऐसे लोग हैं, जो इसकी पात्रता की योग्यता नहीं रखते हैं। इसमें बताया गया है कि यह अध्ययन जिन मूलभूत सुविधाओं को ध्यान में रखकर किया गया, उनमें पीडीएस सिस्टम, अस्पताल, बिजली, स्कूली शिक्षा (कक्षा 12 तक) और पेयजल की आपूर्ति तक पहुंच शामिल है।

सरकारी सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पाता गरीब तबका

इसके अलावा आवश्यक सुविधाओं में बैंकिंग और पुलिस सेवा, भूमि रिकार्ड और पंजीकरण और घर संबंधी सेवाओं को भी शामिल किया गया है। जहां तक आवास संबंधी सेवाओं का सवाल है, अधिकांश ऐसे लोग है, जिन्होंने इसका लाभ नहीं उठाया है। उसका मुख्य कारण यह है कि वे इतने गरीब हैं कि इस विभाग के अधिकारी और कर्मचारियों द्वारा काम कराने के लिए रिश्वत मांगने पर उसे देने में असमर्थ हैं।

ट्रांसपैरेंसी इंटरनेशनल इंडिया सेंटर फॉर मीडिया स्टडीज द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार उनके अध्यक्ष (एडमिरल रिटायर्ड) आरएच ताहिलियानी ने कहा कि निःशुल्क सेवाओ के लिए भी गरीबों को रिश्वत देने के लिए विवश किया जाता है। भ्रष्टाचार के दलदल में फंसा गरीब व्यक्ति अपने आप को असहाय महसूस करता है।

इस विकास से कैसे मिटेगी भूख?

हम लोग जिस अमेरिकी व्यवस्था की फोटोकापी बन रहे हैं, वह स्वयं आज असुरक्षा, अभाव, अस्वस्थता, आर्थिक अराजकता और आयात पर निर्भर है। यह व्यवस्था कचरा निर्यात करती है और मानव संसाधन तथा प्राकृतिक आहार का आयात करती है। उस व्यवस्था की फोटोकापी बनने से अच्छा, 'साईं इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाय, मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाए।'

क्रांति प्रकाश

> बदलती दुनिया के बदलते प्रतिमानों के बीच विचारकों, राजनीतिज्ञों और विकास योजना के रणनीतिकारों के लिए सुलगता सवाल यह है कि 'विकास की कीमत पर भूख' या 'भूख की कीमत पर विकास' में प्राथमिकता किसे दें?

विकास की इच्छा मनुष्य में संभवतः तभी से है जब से उसे प्रकृति ने सचेत किया है। यह इच्छा बाद में 'विकास की भूख' के तौर पर तब्दील होती गई। आज मानव ने आर्थिक, भौतिक और सामाजिक हर स्तर पर विकास के नए आयाम हासिल किए हैं। तकनीकी क्रांति ने मनुष्य की दुनिया ही बदल दी है। इसके बावजूद विकास की ये भूख खत्म नहीं हुई है। शायद यही वजह है कि आज दुनियाभर में 'विकास की भूख' चर्चा में है।

यह अपनी व्यापकता और तीव्र परिवर्तनीयता के कारण विकास बनाम भूख की बहस में तब्दील हो गया है। बदलती दुनिया के बदलते प्रतिमानों के बीच विचारकों, राजनीतिज्ञों और विकास योजना के रणनीतिकारों के लिए सुलगता सवाल यह भी है, 'विकास की कीमत पर भूख' या 'भूख की कीमत पर विकास' में प्राथमिकता किसे दें?

इसी विकास की भूख ने मानव को संवाद एवं संपर्क स्थापित करने की प्रेरणा दी। जहां वर्षों लगते थे वहीं कुछ पल में संवाद हो जाता है। कुछ घंटों में एक द्वीप से दूसरे द्वीप की यात्रा हो जाती है। मानव गुफा से निकलकर ऊंचे भवन में रहने लगा और आसमान में विचरण करने लगा है।

औद्योगिक क्रांति और द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत परिवार छोटे-छोटे होने लगे, स्त्री-पुरुष के बीच विश्वास के अभाव में संबंध-विच्छेद होने लगे और बच्चों बल्कि पूरे परिवार के खान-पान पर असर होने लगा। गांव से कस्बों, कस्बों से महानगर तक बढ़ता मानव समाज यह भूलता जा रहा है कि महानगर उसे चमकीली जिंदगी तो दे सकता है परंतु अन्न प्रदान नहीं कर सकता। अन्न तो खेतिहर के श्रम से खेत में ही पैदा हो सकता है। परंतु आज केरल हो या बिहार, गांव युवाहीन हो गया है। जिसके कारण अन्न उत्पादन पर असर पड़ा है। इस वर्ष पंजाब में खेतिहर मजदूरों का अभाव रहां।

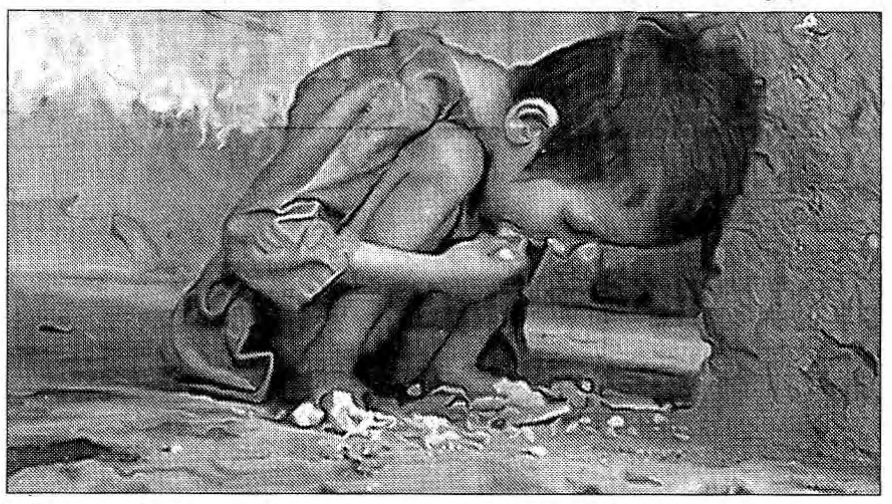

अमेरिकी कृषि विभाग के आर्थिक शोध के अनुसार देश (अमेरिका) में विकसित और आर्थिक रूप से संपन्न तीन करोड़ अस्सी लाख लोग भुखमरी के कगार पर हैं। एक करोड़ चालीस लाख बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। 21-22 करोड़ की आबादी वाले अमेरिका की यह हालत है। भारत और चीन की हालत तो और भी बदतर है। यही वजह है कि यूरोपीय संघ कृषि पर अपने बजट का चालीस प्रतिशत व्यय करने जा रहा है। यूरोपीय संघ अपने किसानों को परती जमीन रखने पर अनुदान देता है ताकि खेती की उर्वरा शक्ति बनी रहे। स्वतंत्रता के बाद भारत ने विकास का जो मॉडल अपनाया उससे आर्थिक विषमता, पर्यावरण की समस्या, अपराध, महिलाओं पर अत्याचार, मातृभाषा की उपेक्षा में बढ़ोतरी हुई है।

जिस पंजाब में सन 1961 से पहले 21 प्रकार की फसल होती थी वहां आज सिर्फ 9 प्रकार की ही फसल पैदा की जा रही है। प्रकृति ने अस्सी हजार प्रकार के अनाज, फल, सब्जी मानव व अन्य जीवों के लिए उपलब्ध किए हैं। तीन हजार प्रकार के फलों, सब्जियों और अनाज का हजारों वर्षों से उपयोग हो रहा है, पर यह भी सच है कि अदृश्य शक्तियों के कारण संसार की 75 प्रतिशत जनसंख्या आठ प्रकार के आहार ग्रहण करने को मजबूर है।

आज से पचास वर्ष पूर्व तक संसार की किसी संस्कृति में सोयाबीन का प्रचलन नहीं था। पर आज जानवरों के लिए चारा और खाद्य तेल के तौर पर सोया का जमकर इस्तेमाल हो रहा है, विशेषकर अनुवांशिक परिवर्धन के विधि निर्मित बीज वाले सोया का प्रचलन है। आज भारत में खाद्य तेल आयात करना पड़ रहा है। एक दशक पूर्व गांव-गांव में सरसों के तेल की पेराई होती थी। अदृश्य शक्ति के कारण लगभग तेल पेराई की दस लाख इकाइयां बंद हो गईं और 10 लाख परिवार बेरोजगार हो गए।

एक किलो मांस के लिए सात किलो अनाज चाहिए। अब तो वाहन चलाने के लिए पेट्रोल, डीजल, गैस की जगह जैव ईंधन की आवश्यकता पडने लगी है। प्रकृति अपने जीवों के लिए आहार की व्यवस्था कर सकती है पर मानव निर्मित यंत्र के लिए नहीं। इसी कारण संसार में भुखमरी बढ़ रही है, लोग बीमार हो रहे हैं, लगभग एक अरब लोग भुखमरी के शिकार हैं तो दूसरी ओर लगभग दो अरब मोटापा के शिकार हैं। इस सत्य को हम झुठला नहीं सकते इसलिए हमें विकास की जगह 'उपयुक्त विकास का वातावरण' की नीति बनानी होगी। भूख मिटाने के लिए विविध प्रकार के अनाज का उपयोग करना होगा। जैव विविधता के संकट को खत्म करना होग और सबसे बड़ी बात यह कि महानगरों के साथ-साथ गांव को भी ध्यान में रखनां होगा।

देश की राजधानी दिल्ली में ऊर्जा का संकट नहीं है, पर दिल्ली के पड़ोस में ऊर्जा का संकट है। इस विषमता को खत्म करना होगा। बड़े बांध की जगह छोटे बांध बनाने होंगे। प्रकृति द्वारा उत्पादित ऊर्जा व प्रकृति से छेड़छाड़ किए बिना ऊर्जा का उत्पादन करना होगा तभी हम आने वाले अंधकारमय युग से बच सकते हैं क्योंकि तेल और गैस 22वीं शताब्दी में उपलब्ध नहीं रहेगा। इसलिए हमें तेल आधारित व्यवस्था से मुक्त होना होगा। ऊर्जा अपव्यय करने वाले कार्यों से दूर रहना होगा तभी हम भूख से मुक्त हो सकते हैं। हम लोग जिस अमेरिकी व्यवस्था की फोटोकापी बन रहे हैं, वह स्वयं आज असुरक्षा, अभाव, अस्वस्थता, आर्थिक अराजकता और आयात पर निर्भर है। यह व्यवस्था कचरा निर्यात करती है और मानव संसाधन तथा प्राकृतिक आहार का आयात करती है। इस व्यवस्था में रहने वाले बच्चे खिलौनों के लिए चीन और दूसरे एशियाई देशों पर निर्भर हैं। उस व्यवस्था की छायाप्रति बनने से अच्छा, 'सांई इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाय, मैं भी भूखा न रहूं, साधु न भूखा जाए।' तप, त्याग, तपस्या की परंपरा मानने वाले भारत को सचेत रहने की आवश्यकता है।

(लेखक जैविक खेती अभियान के संचालक हैं)

सेना में स्त्री

अलका आर्य

आधी दुनिया

हाल में भारत सरकार ने सेना के तीनों अंगों में महिला अधिकारियों की स्थायी भर्ती संबंधी फैसले से देश को खासतौर पर महिलाओं के बीच यह सकारात्मक संदेश भेजा है कि वह अब नौकरी के इस क्षेत्र में भी समानता के सिद्धांत को लागू करेगी। सरकार का यह फैसला स्वागतयोग्य है। मगर सरकार ने थल सेना में पैदल, तोपखाने और टैंक बटालियनों, वायु सेना में लड़ाकू विमानों और नौसेना में जंगी पोतों पर महिलाओं की नियुक्ति नहीं करने के अपने पूर्व के फैसले में कोई बदलाव न कर यह भी जता दिया है कि यहां वह अभी गैरबराबरी के चलन को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है।

सेना के तीनों अंगों में महिलाओं की स्थायी भर्ती की मांग लंबे समय से की जा रही थी। अपने देश में 1992 में महिलाओं की सेना के तीनों अंगों में भर्ती शुरू हो गई थी लेकिन यह नौकरी कच्ची थी। उनकी शारीरिक, मानसिक ताकत को कमतर आंका गया। लिहाजा, कमीशंड महिला अधिकारियों का कार्यकाल पांच से चौदह वर्ष तक तय कर दिया गया। वे पुरुष अधिकारियों की तरह सेवानिवृत्त होने की उम्र तक नौकरी करने की हकदार नहीं समझी गईं। अपने यहां सेना में महिलाएं कानून, शिक्षा, खुफिया, इंजीनियरिंग और चिकित्सा विभागों में नियुक्त की जाती हैं। गौरतलब है कि चिकित्सा को छोड़ कर शेष सभी विभागों में उन्हें बतौर स्थायी कमीशन नियुक्त नहीं किया जाता है।

1992 में थल सेना में महिला अधिकारियों की संख्या पचास थी जो अब नौ सौ का आंकड़ा पार कर गई है। इस समय भारतीय थल सेना के चौंतीस हजार अधिकारियों में से 934 महिला अधिकारी हैं। नौसेना की सात हजार और वायु सेना की दस हजार दो सौ अधिकारियों में महिला अधिकारियों की संख्या क्रमशः सौ और साढ़े चार सौ है। सेना के तीनों अंगों में महिला अधिकारियों की भर्ती शुरू होने के सोलह साल बाद ये आंकड़े निराश करते हैं।

सेना में महिला अधिकारियों की कम भर्ती के पीछे एक प्रमुख तर्क यह दिया जाता है कि यहां नौकरी करने के लिए जिस नजरिये और रुझान की जरूरत होती है वह नौकरी के अन्य क्षेत्रों से एकदम अलग है। इस खास तरह की दलील समाज के सोच पर नकारात्मक असर डालती है। वक्त गुजरने के साथ-साथ सरकार पर नौकरी के इस क्षेत्र में महिला-पुरुष के बीच भेदभाव करने वाली नीति को खत्म करने का दबाव बनाया गया और उसी के मद्देनजर पिछले महीने सरकार ने सेना के तीनों अंगों में महिला अधिकारियों की स्थायी भर्ती करने का फैसला लिया।

यह फैसला जहां सेना में महिला अधिकारियों की संख्या में वृद्धि की उम्मीद जगाता है वहीं युद्ध के मोर्चे पर महिलाओं की तैनाती न करने के रुख पर सरकार का कायम रहना एक व्यापक बहस की मांग करता है। दरअसल, युद्ध के मोर्चे पर महिला की भूमिका के पक्ष और विपक्ष में जो दलीलें पेश की जाती हैं उन पर गौर फरमाना जरूरी है। एक पूर्व थलसेनाध्यक्ष का कहना है कि युद्ध में लड़ने वाली टोली की अग्रिम पंक्ति के लिए महिलाओं को भर्ती नहीं किया जाना चाहिए। क्या आप चाहेंगे कि आपकी पत्नी या बहन बंकर में पांच पुरुषों के साथ रहे जैसा कि पुरुष सियाचिन में करते हैं? भारतीय सेना ऐसा कोई कार्य नहीं करेगी जो समाज को स्वीकार्य न हो।

एक अन्य पूर्व सेना अधिकारी की राय में महिलाओं को लड़ने वाली टोली का हिस्सा बनने की इजाजत देने का मतलब सेना की कार्यक्षमता को कम करना है। रक्षा मंत्रालय की एक रपट में भी महिला अधिकारियों को युद्ध के मोर्चे पर उस जगह तैनात न करने की अनुशंसा की गई है, जहां उसके शत्रु के शरीर के करीब आने के अवसर ज्यादा होते हैं। पिछले साल रक्षा मंत्रालय ने इसी अनुशंसा के आधार पर एक बयान भी जारी किया था, मगर यह बयान सैन्यबल चिकित्सा सेवा की उस रपट से मेल नहीं खाता जिसमें स्पष्ट कहा गया है कि महिलाएं शारीरिक और मानसिक तौर पर युद्ध के लिए स्वस्थ मानी जानी चाहिए। उनकी भर्ती से सेना की कार्यक्षमता पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ेगा।

सेना में भर्ती होने वाली महिलाएं सहायक की भूमिका निभाएं या पुरुष सहकर्मियों की तरह युद्ध लड़ने वाली टोलियों की अग्रिम पंक्ति में खड़ी हों या लड़ाकू विमान और जंगी पोत में तैनात हों, इन सवालों पर दुनिया के विभिन्न देशों में गाहे-बगाहे बहस होती रही है। अमेरिका में भी पेंटागन ने महिलाओं की लड़ाकू भूमिका पर प्रतिबंध लगाया हुआ है लेकिन इराक और अफगानिस्तान में सत्तर अमेरिकी महिला सैनिक अधिकारियों की मौत बताती है कि इस प्रतिबंध के उल्लंघन में पेंटागन को कोई एतराज नहीं है। अमेरिकी जनता ने भी युद्ध में अपनी महिला सैनिकों की मौत और पेंटागन की नीति के उल्लंघन को मुद्दा नहीं बनाया। देखना यह है कि पुरुष प्रधान मानसिकता की शिकार भारतीय सेना आधुनिक युद्धों के इस दौर में कब महिलाओं की शारीरिक, मानसिक क्षमता पर भरोसा करके अपनी नीति में बदलाव करती है।

सशस्त्र बलों में महिलाओं के लिए काम करना आसान नहीं

संजय सिंह/सहारा न्यूज ब्यूरो
नई दिल्ली, 20 अगस्त।

- बीते छह सालों में थलसेना में महिला यौन शोषण के सात मामले दर्ज
- तीन वरिष्ठों के खिलाफ यौन शोषण की एफआईआर दर्ज कराने वाली वायुसेना की महिला अधिकारी अंजलि खुद 'कोर्ट मार्शल' की शिकार, निष्कासित
- तनाव से परेशान लेफ्टिनेंट सुष्मिता चक्रवर्ती ने आखिरकार आत्महत्या का रास्ता चुना
- बीते साल कैप्टन मेघा राजदान की हत्या का राज अब तक नहीं खुला

सशस्त्र बलों में महिला अधिकारियों की स्थायी नियुक्ति के लिए एक अलग 'कमीशन' का गठन अंतिम दौर में है, ऐसे में यह सवाल उठना लाजिमी है कि क्या महिला अधिकारियों के लिए सैन्य बलों में कार्य करना आसान है। 11 लाख सैनिकों से युक्त भारतीय थलसेना में इस समय महज एक हजार महिला अधिकारी हैं। मात्र इतनी सी संख्या में बीते छह सालों में यौन शोषण के सात मामलों का दर्ज होना सैन्य अधिकारियों के पेशानी पर बल डालने वाला है। इसके अलावा दो मामले तो ऐसे भी हैं जो सेना पर दाग के समान हैं। एक, जम्मू में तैनात कैप्टन मेघा राजदान की हत्या और दूसरे लेफ्टिनेंट सुष्मिता चक्रवर्ती की आत्महत्या।

रक्षा मंत्रालय के आधिकारिक सूत्रों के मुताबिक वर्ष 2002 से 2006 के बीच थलसेना में महिला अधिकारियों के यौन शोषण के पांच मामले दर्ज किए गए। दो और मामले इधर के दो वर्षों में दर्ज किए गए हैं। इसके इतर जुलाई 2007 में जम्मू में तैनात कैप्टन मेघा राजदान की हत्या के राज का अब तक खुलासा न होना भी मामले को यौन शोषण की तरफ ही इंगित करता है। यद्यपि इस मामले में उसके पति को हत्या के आरोप में गिरफ्तार किया जा चुका है। थलसेना में कार्यरत लेफ्टिनेंट सुष्मिता चक्रवर्ती ने बीते साल आत्महत्या कर ली थी। उनके परिजनों ने कहा कि वह कार्य के अत्यधिक बोझ के चलते तनाव में रहा करती थी। हालांकि उसने कहीं भी इस तरह की शिकायत दर्ज नहीं कराई थी कि उसका सेक्सुअल हरेसमेंट किया जाता है। लेकिन परिजनों ने इस तरफ भी इशारा किया था।

थलसेना में सर्वप्रथम वर्ष 1992 में 50 महिला अधिकारियों की नियुक्ति हुई थी। इस समय इनकी संख्या करीब एक हजार है। एक वरिष्ठ अधिकारी ने बताया कि ज्यादातर महिला अधिकारी वरिष्ठों द्वारा की जाने वाली बदतमीजियों और शोषण के मामलों को नजरअंदाज ही करती हैं। मामला तब दर्ज कराने की नौबत आती है जब पानी सिर के ऊपर हो जाता है।

वायुसेना के इतिहास में फ्लाइंग आफिसर अंजलि गुप्ता प्रथम महिला अधिकारी थीं, जिनके खिलाफ दिसम्बर 2005 में कोर्ट मार्शल की कार्रवाई कर उन्हें नौकरी से निष्कासित कर दिया गया। उनकी खता बस इतनी थी कि उन्होंने अपने तीन वरिष्ठों-स्क्वाड्रन लीडर आरएस चौधरी, विंग कमांडर वीसी सीरियाक और एयर कमोडोर अनिल चोपड़ा के खिलाफ यौन शोषण की लिखित शिकायत स्थानीय पुलिस थाना (विमानपुरा) में दर्ज कराई थी। इससे तिलमिलाए अधिकारियों ने उनके खिलाफ सात शिकायतें दर्ज कर कोर्ट मार्शल की कार्रवाई की और नौकरी से निष्कासित कर दिया।

अंजली गुप्ता के कोर्ट मार्शल की कार्रवाई पूरे देश में सुर्खियों में रही और लोगों की निगाहें इस पर भी थीं कि क्या अंजली को सजा होगी या उसे न्याय मिलेगा। वायुसेना में तैनात कुल 600 महिला अधिकारियों ने भी कोर्ट मार्शल की इस कार्रवाई को बड़े ही ध्यान से देखा लेकिन कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। वायुसेना में अंजली गुप्ता के मामले के अलावा यौन शोषण की दूसरी शिकायतें फिलहाल सामने नहीं आई हैं। एक महिला अधिकारी ने अपना नाम न छापने की शर्त पर बताया कि शिकायतों के न होने का मतलब यह भी नहीं निकालना चाहिए कि सब कुछ ठीकठाक चल रहा है। नौसेना में महिला अधिकारियों की संख्या महज 250 है और वहां यौन शोषण के मामले प्रकाश में नहीं आए हैं।

द्रौपदी का दुख

विमल कुमार

दुनिया मेरे आगे

पिछले दिनों राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की रंगकर्मी असीमा भट्ट की एकल अभिनय प्रस्तुति 'द्रौपदी' देखने का अवसर मिला। एक दर्शक के रूप में मुझे असीमा की प्रस्तुति उतनी संतुष्ट नहीं कर पाई, जिसकी अपेक्षा की थी। पर उसमें 'द्रौपदी' के कुछ सवालों के नए संदर्भ मुझे दिखाए दिए। सबसे महत्त्वपूर्ण और पीड़ादायी प्रसंग द्रौपदी के इस समापन वाक्य में था कि 'आज कृष्ण कहां हैं?' महाभारत में द्रौपदी को चीरहरण से बचाने वाले कृष्ण थे, पर आज असीमा जैसी अनेक स्त्रियों को लगता है कि हमारे समय में कोई 'कृष्ण' मुक्तिदाता नहीं है। इस रूप में आज की द्रौपदी का दुख ज्यादा बड़ा है।

दरअसल, महाभारत में द्रौपदी के जिन पांच पतियों का जिक्र किया गया है, उसका रूपक आज बदल गया है। आज उसकी जगह पांच शक्तियों ने स्त्री को अपने अधीन कर लिया है। एक तरफ राज्य, बाजार और मीडिया है, तो दूसरी तरफ समाज और न्यायिक प्रक्रिया। आधुनिक युग की लोकतांत्रिक व्यवस्था में राज्य से यह उम्मीद थी कि वह स्त्री को मुक्त करेगा, पर लगता है राज्य स्त्री को उसके अधिकार नहीं देना चाहता है। इसका एक उदाहरण तो महिला आरक्षण विधेयक ही है जो पिछले तेरह साल से लंबित पड़ा है।

अगर आज देश में महिला सशक्तीकरण पहले से अधिक हुआ है तो इसका कारण यह है कि महिलाओं ने अपने कुछ अधिकार राज्य से छीने हैं। बाजार के आगमन से स्त्रियों को थोड़ी उम्मीद जगी कि अगर राज्य ने हमें मुक्त नहीं किया तो बाजार हमें अवश्य मुक्त कर देगा। बाजार और तकनीक ने स्त्रियों को कुछ हद मुक्त करने की कोशिश की है, पर इसका असर यह भी हुआ कि बाजार ने 'नारी देह और सौंदर्य' का अपने लिए इस्तेमाल भी करना शुरू कर दिया। वह एक तरफ उसकी मुक्ति के गीत गाता है तो दूसरी ओर उसका शोषण भी करने लगा। यह अकारण नहीं है कि आज मीडिया, फिल्म और विज्ञापनों में नारी देह का अधिकाधिक इस्तेमाल होने लगा है।

बॉलीवुड की नायिकाएं 'आइटम गर्ल' में तब्दील हो गई हैं। समाचारवाचिकाएं मॉडलों में बदल रही हैं। मध्यवर्गीय स्त्रियों के लिए यह मुक्ति हो सकती है, पर सही अर्थों में यह स्त्री मुक्ति नहीं है। बाजार में इस शोषण के खिलाफ स्त्री संगठनों की ओर से कोई आवाज नहीं है क्योंकि स्त्री-संगठनों को चलाने वाला नेतृत्व भी शहरी मध्यवर्ग का है। साहित्य में इसका प्रतिकार नहीं नजर आता। हिंदी की लेखिकाएं और कवयित्रियां भी इस खतरे को नहीं समझतीं। पिछले दिनों प्रसिद्ध लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने एक संगोष्ठी में 'मोबाइल क्रांति' के जरिए ग्रामीण स्त्री के सशक्तीकरण की तारीफ तो की, पर उन्होंने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया कि मोबाइल आ जाने के बावजूद उन स्त्रियों को अभी भी धुएं में खाना पकाना पड़ रहा है और घूंघट उठाना मुश्किल हो रहा है। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को मिले आरक्षण से थोड़ी स्थिति जरूर बदली है, पर अभी भी उनके पास वास्तविक अधिकार नहीं हैं।

राज्य बाजार और मीडिया के अलावा समाज और न्यायिक प्रक्रिया भी स्त्रियों को कैद किए हुए है। दहेज, भ्रूण हत्या, यौन हिंसा के जरिए समाज आज भी स्त्रियों पर दमन कर रहा है। आर्थिक उदारीकरण के बाद विकास की तथाकथित चकाचौंध में स्त्रियों के प्रति हिंसा की घटनाओं में वृद्धि हुई है। इस असमान और बदरंग विकास ने समाज में ऐसी लिप्सा और क्रूरता को जन्म दिया है, जिसके कारण बलात्कार और यौन शोषण की घटनाओं में न केवल वृद्धि हुई है, बल्कि उसके कई घृणित और विकृत रूप भी सामने आए हैं।

ऐसे में न्यायपालिका और न्यायिक प्रक्रिया से यह उम्मीद की जाती है कि वह स्त्रियों को थोड़ा मुक्त कर सके। लेकिन देश में कानून का जो ढांचा है, वह पुरुष मानसिकता से बना है। कानून बनाने वाली एजेंसियों और खुद न्यायपालिका में भी पुरुषों की संख्या अधिक है। इस कारण ये संस्थाएं अभी 'जेंडर' के सवाल पर उतनी संवेदनशील नहीं हैं जितनी उनसे अपेक्षा की जाती है। इस तरह, आज की 'द्रौपदी' भी इन पांच शक्तियों के वर्चस्व के तले दबी हुई है। ऐसी स्थिति में समाज की अन्य द्रौपदियों को एकजुट होना होगा, तभी वे कृष्ण की अनुपस्थिति में भी अपनी लड़ाई खुद लड़ पाएंगी।

आज की द्रौपदी को 'कृष्ण' पर भी शक करने की जरूरत है, क्योंकि कई पुरुष स्त्री देह की मुक्ति इसलिए चाहते हैं, ताकि वे उसे भोग सकें। हिंदी में स्त्री विमर्श 'मित्रो-मरजानी' के इर्द-गिर्द अधिक केंद्रित है, उसे 'कैथरकलां की औरतें' पर ध्यान देने की जरूरत है। आदिवासी, दलित और पिछड़ी जाति की स्त्रियों का विमर्श मध्य वर्ग की स्त्रियों के विमर्श से कहीं अधिक तकलीफदेह है। 'द्रौपदी' की प्रस्तुति में अगर ये सवाल शामिल होते तो उसकी सार्थकता कुछ ज्यादा होती।

अब महिलाएं भी चलाएंगी ऑटो

सहारा न्यूज ब्यूरो
नई दिल्ली, 7 सितम्बर।

अनोखी शुरुआत

- 250 महिलाओं को तिपहिया चलाने का प्रशिक्षण
- एनजीओ की पहल
- गरीब घरों की महिलाओं को पैरों पर खड़ा करने का मकसद

कर्मभूमि संस्थान वेलफेयर सोसायटी द्वारा आज आयोजित एक समारोह में महिलाओं को ऑटो चलाने का प्रशिक्षण देने की शुरूआत की गई। प्रशिक्षण में करीब 250 महिलाएं ऑटो चलाने का प्रशिक्षण लेंगी। रानी झांसी रोड स्थित अम्बेडकर भवन में आयोजित समारोह में इस प्रशिक्षण कार्य का उदघाटन एनएसएस के कार्यक्रम सलाहकार गोपाल ने किया।

इस दौरान उन्होने महिलाओं के उत्साह की सराहना करते हुए हर संभव सहयोग देने का आश्वासन दिया। उन्होने कहा कि महिलाओं को भी घरों से बाहर निकलकर अपने पैरों पर खुद ही खड़ा होना चाहिए।

संस्थान की संचालक सुनीता ने बताया कि महिलाओं को अपने पैरो पर खड़ा करने के लिए उसने झुग्गी झोपड़ियों और गरीब परिवारों की महिलाओं को संपर्क किया और उन्हें जागरूक कर तिपहिया चलाने को उत्साहित किया। सुनीता ने बताया कि इस दौरान करीब 250 महिलाओं ने तिपहिया सिखने की इच्छा जाहिर करते हुए प्रशिक्षण के लिए आवेदन किया है। सुनीता ने मुख्यमंत्री ने परिवहन मंत्री से महिलाओं को प्रशिक्षण के लिए सुविधा दिलाने की मांग की है।

देखभाल के अभाव में

बुजुर्ग

सुनीता ठाकुर

अपने देश में बुजुर्गों के साथ अत्याचार बढ़ रहा है। सन 2001 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में बुजुर्गों की संख्या इस समय 7 करोड़ 70 लाख से ज्यादा है। विश्व में यह आबादी दूसरे स्थान पर है। बुजुर्गों की संख्या में यह वृद्धि निस्संदेह उनको मिल रही बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं और खासकर परिवारों में बुजुर्गों के प्रति एक सम्मानित और मानवीय स्थितियों की ओर संकेत करती है। लेकिन बावजूद इसके पिछले कुछ सालों में राजधानी और दूसरे बड़े शहरों में बुजुर्गों के साथ हिंसा की वारदातें बढ़ी हैं।

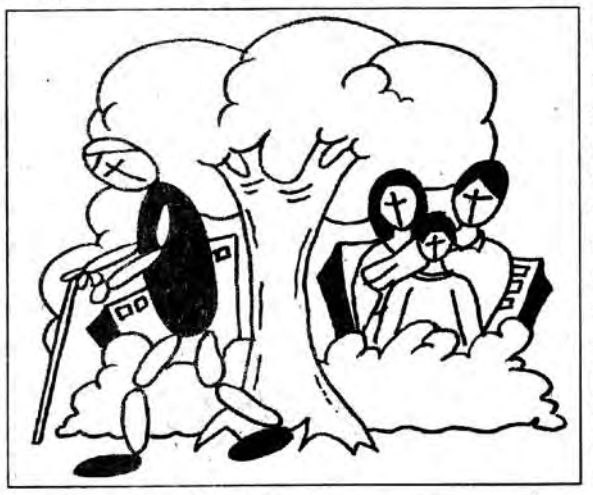

उम्र बढ़ने के साथ परिवारों में तीन पीढ़ियों के एक साथ दर्शन आमतौर पर हो जाते हैं। दादा-दादी, माता-पिता और उनके बच्चे। इन तीन पीढ़ियों के बीच वैचारिक टकराव और दूरियां लगातार बढ़ी हैं। कारण आज की युवा पीढ़ी के लिए बुजुर्गों की देखभाल एक भारी जिम्मेदारी बनकर रह गई है, जिसे वे चाहे-अनचाहे ढोने के लिए मजबूर हैं। इस एक कारण हमें दो पीढ़ियों के बीच होने वाले वैचारिक टकराव, सोच के अंतर और असामंजस्यकारी अहं पर नजर रखना जरूरी है। यही वे कारण हैं जिससे युवा और बुजुर्ग पीढ़ी के बीच दूरी और भेद पैदा होते हैं और दोनों के बीच सामान्य संबंधों नहीं पनपते।

आज एकल परिवारों और उन्मुक्त परिवारों की व्यवस्था केंद्रित होती जा रही है। इस एकल परिवार व्यवस्था में बुजुर्ग एक फालतू सामान या फिर परिवार की व्यवस्था में एक फिलर बनकर रह गए हैं। उनकी भूमिका बड़े होने के नाते या तो घर की चारदिवारियों में कैद चौकीदार की होती जा रही है या फिर वे बच्चों के केयरटेकर बनकर रह गए हैं। आगे बहुत कुछ कर जाने की दौड़ में कहीं हम अपनी ही जड़ों से बिछुड़ते जा रहे हैं। नतीजा या तो हमें सड़क पर अपने घर का पता ढूंढ़ते या फिर अपनी ही दुनिया में पगलाए बुजुर्ग मिल जाते हैं या फिर अपने ही आस-पड़ोस में अत्याचार के शिकार होते बुजुर्ग हमें मिल जाते हैं। यों बुजुर्गों के लिए सहायतार्थ बहुत-सी संस्थाएं और शेल्टर होम खुल गए हैं। मगर क्या शेल्टर होम या फिर संस्थाएं समस्या का स्थायी समाधान हो सकते हैं? क्या हम अपनी ही जड़ों के लिए अपने आंगन में जगह नहीं बना सकते। ऐसा क्या है जो दो पीढ़ियों के बीच इतने बड़े नकार और उपेक्षा को जन्म देती है।

संयुक्त परिवारों में महिलाओं पर घरेलू जिम्मेदारियां ज्यादा थी। परिवार में बेटे बहू की अनुपस्थिति में बच्चों की देखभाल और भरण-पोषण में उनकी अहम भूमिका थी। हमने साठ साल से ज्यादा उम्र के दस बुजुर्ग पुरुषों से भी बात की। इनमें से चार संयुक्त परिवार के साथ जुड़े थे। चार में दो पेंशनशुदा और एक दुकान चलाते थे। एक पूरी तरह परिवार पर निर्भर थे। दस में से चार पुरुष अपनी पत्नी के साथ अलग रहते थे। इन्होंने बताया कि अनबन के कारण परिवार से बेटे बहू अलग हुए। अनबन के कई कारण सामने आए- जिनमें परिवार की व्यवस्था से तालमेल न बन पाना, रोज-रोज के झगड़े, मतभेद, सोच का टकराव और आजाद ख्याल जिंदगी की तमन्ना जिसके कारण परिवार में दूरियां पैदा हुईं। दो ऐसे बजुर्ग पुरुषों से भी मुलाकात हुई जिन्हें किसी संस्था के सहयोग से वृद्धाश्रम भेजा गया था। इनमें एक भूलने की बीमारी से ग्रस्त थे। उन्हें अपने घर का पता मालूम नहीं था- और बदहाल स्थिति में पुलिस के सहयोग से संस्था द्वारा आश्रय प्रदान किया गया था। एक अपनी इच्छा से घरबार छोड़कर वृद्धाश्रम में चले आए थे। वे पेंशनशुदा बुजुर्ग परिवार की मनमानियों से परेशान होकर इस निर्णय पर पहुंचे थे।

इन बुजुर्गों से बात करने पर कुछ खास बातें सामने आई। इनमें से सात की जीवनसाथी महिला नहीं थी। परिवार में एक बोझ, अकेलेपन, जिल्लत से परेशान थे। पैसा हाथ में होने के कारण किसी हद तक सम्मान और पहचान मिलने की बात उन्होंने बताई किंतु अपने ही घर में अनजान की तरह एक कोने में पड़े रहने की तकलीफ को बयान किए बिना वे नहीं रह सके।

संयुक्त परिवारों में गाहे-बगाहे उनकी सुध लेने वाला परिवार में कोई न कोई होता ही है। एकल परिवारों में रह रहे बुजुर्गों के साथ अकेलेपन, निराशा, हताशा, स्वास्थ्य और भावनात्मक परेशानियां ज्यादा होती हैं। परिवारों के टूटने के बहुत से कारण थे- गांवों से शहरों में पलायन के अलावा बेटे व बहू दोनों का नौकरीशुदा होना, छोटे-छोटे घर, कम तनख्वाह में घर खर्च न चलना जैसे बहुत से कारण सामने आए। जिन परिवारों में पति-पत्नी दोनों नौकरीशुदा थे उनमें पारिवारिक तनाव और टूटन की बातें ज्यादा सामने आती हैं। शादी के रिश्तों में दोहरे मानदंड कहीं न कहीं न कहीं बुजुर्गों के प्रति मोहभंग का कारण बनती हैं।

बहुत से मामलों में बुजुर्गों के साथ अन्याय के खिलाफ उनके परिवार वालों से बात करने पर एक कड़वा सच यह भी सामने आया कि परिवार में उनके हिंसात्मक और क्रूर व्यवहार से तंग आकर बहू-बेटे अलग रहने का निर्णय लेते हैं और उनके लिए किसी भी वैकल्पिक व्यवस्था के लिए तैयार होते हैं लेकिन किसी भी कीमत पर उनके साथ रहने या फिर उन्हें अपने साथ रखने के लिए तैयार नहीं होते। ❐

हमारा नया प्रकाशन
जागोरी नोटबुक 2009

जागोरी हाजिर है नोटबुक 2009 के साथ। इस बार हम औरतो के श्रम से जुड़े कुछ अहम सवालो, उनके गौरव, सम्मान और विश्विकरण के बदलते परिवेश मे जीविका के घटते चुनावो, उनसे जुझने की ताकत को आपसे बाँटने का प्रयास किया है।

सहयोग राशि रू 100/-

निशुल्क प्रतियों के लिए संपर्क करें -

जागोरी बी-114 शिवालिक मालविया नगर, नई दिल्ली-110017

फ़ोनः 26691219, 26691220

email: resource@jagori.org/jagori@jagori.org

मुद्दा · आशुतोष प्रताप सिंह

आज भी जारी है गुलामी प्रथा

सभ्यता के इस मुकाम पर आकर भी असभ्य आचरण छोड़ पाना हमारे लिए संभव नहीं हो सका है, तभी गुलामी जैसी घृणास्पद प्रथा आज भी मौजूद है। सूडान, ब्राजील, पाकिस्तान जैसे कई देश हैं जहां दास प्रथा की बुराई बदस्तूर कायम है। थोड़े भिन्न रूप में भारत में भी यह देखी जा सकती है। यहां तक कि मध्यपूर्व तथा कई अन्य देशों में भी प्रवासी कामगारों के साथ जिस तरह का व्यवहार होता है उसे देख गुलामों और उनमें फर्क करना मुश्किल है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन का एक अध्ययन बताता है कि ब्राजील में इस समय करीब 25 हजार लोग गुलामों का जीवन बिता रहे हैं। इनमें से अधिकांशतः अमेजन इलाके में जंगल काटकर फसल उगाने या भूमि को चारागाह बनाने में जुटे हुए हैं। ये गुलाम कर्ज न चुका पाने के कारण दास बने हैं और कर्जदारों ने इन पर निगरानी के लिए हथियारबंद लोगों को तैनात कर रखा है। इसी संगठन के एक आंकड़े के अनुसार गत 30 सालों में 500 से अधिक दास इन जमींदारों के हाथों मारे जा चुके हैं। कुछ साल पहले सूडान के संबंध में भी ऐसी ही रिपोर्ट सामने आई। ब्रिटेन और पूर्वी अफ्रीका में कार्यरत रिफ्ट वैली इंस्टीट्यूट ने सूडान के उत्तरी बहर अल गजल प्रांत में हजारों लोगों से बातचीत के बाद जो रिपोर्ट जारी की उसके अनुसार यहां 20 वर्षों में लगभग 11000 लोगों का अपहरण करके उन्हें गुलाम बनाया गया। इनमें से अधिकांशतः उत्तरी अरब के लड़ाकू कबीलों द्वारा गुलाम बनाए गए हैं।

संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों की बात करें तो दुनिया भर में दो करोड़ लोग अब भी गुलाम हैं। इन गुलामों में बंधुआ मजदूरों को भी शामिल किया गया है। ऐसे मजदूरों की संख्या भारत, पाकिस्तान तथा अन्य दक्षिण एशियाई मुल्कों में अधिक है। यहां बंधुआ मजदूरी की सबसे बड़ी वजह कर्ज है। खेती के काम में लगे मजदूर शुरू में गुजारे के लिए और फिर आगे खाद, बीज, रसायन आदि के लिए कर्ज लेते हैं। धीरे-धीरे कर्ज इतना बढ़ जाता है कि फसल की कटाई के बाद भी उसे चुकाना संभव नहीं होता। महाजन कर्ज न चुका पाने की सजा जीवन भर चौबीसों घंटे की गुलामी के रूप में देता है। कानून हालांकि इस प्रथा को लेकर काफी सख्त है किंतु शासन की लापरवाही से महाजनों तक कानून के हाथ पहुंच ही नहीं पाते। भारत के गरीब राज्यों में शुमार बिहार में पिछले वर्ष का एक मामला तो काफी चौंकाने वाला रहा है। यहां जवाहर मांझी ने अपने घर की एक शादी के लिए 40 किलो चावल गांव के भूस्वामी से उधार लिए थे जिसके एवज में वह तीस बरस से उस भूस्वामी के खेत में मजदूरी करता रहा। बंधुआ मजदूरों का कर्ज कई बार उन्हें गुर्दे बेचने के लिए भी बाध्य करता है। आज अवैध अंग-व्यापार की एक बड़ी वजह बंधुआ मजदूरों की बुरी हालत है। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठन ह्यूमन राइट्स वॉच ने एक रिपोर्ट में बताया है कि प्रवासी लोगों खासकर घरेलू नौकरानियों के साथ अरब देशों में गुलामों सा ही दुर्व्यवहार होता है। कई मामले हैं जो साबित करते हैं कि उन्हें घरों में कैदी का जीवन जीना होता है। वहां मालिकों द्वारा पासपोर्ट जब्त कर लिए जाते हैं और सारा समय उन्हें मालिक की मर्जी पर ही गुजारना होता है। ऐसा नहीं कि पश्चिमी देशों में इस तरह की अमानवीय घटना बिलकुल नहीं होती। हाल ही में अमेरिका में भारतीय मूल के एक दंपत्ति को दो घरेलू नौकरानियों के साथ गुलामों की तरह व्यवहार करने पर दंडित किया गया। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं जो साबित करते हैं गुलामी का जीवन जीने वाले लोग तमाम जगहों पर मौजूद हैं। कानून भले ही बना लिये गए हों लेकिन इसका पालन सही तरीके पर नहीं हो पा रहा। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने ब्राजील में हो रही गुलामी प्रथा पर सरकार के प्रयासों की तो सराहना की लेकिन साथ ही यह भी कहा कि जहां मसला राजनीतिक नेता और न्यायधीशों के पद पर बैठे जमींदारों का होता है वहां रास्ते में अड़चनें आती हैं। उसने ब्राजील की संसद में अटके कई प्रस्तावित कानूनों का कारण भी यही बताया। कमोवेश ऐसे ही हालात सारे देशों के हैं।

दरअसल बदले हालातों में गुलामी प्रथा थोड़े भिन्न रूप में सही किंतु अपनी मौजूदगी का अहसास लगातार करा रही है। बेरोजगारी और भुखमरी जैसी वैश्विक समस्या के रहते इसका खात्मा भी संभव नहीं। इसे खत्म करना है तो संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों के जरिये हमें गंभीर प्रयास करने होंगे। घरेलू कामगारों के संबंध में ठोस कानून बनाने होंगे। खासकर मध्यपूर्व के देशों को बाध्य करना होगा कि घरेलू कामगारों की दशा पर सख्त निगरानी रखी जाए। पासपोर्ट जमा करा कर काम करने की व्यवस्था खत्म करनी होगी। भारत जैसे देशों में हालांकि रोजगार गारंटी योजना के बाद बंधुआ मजदूरी के मामले में कुछ सुधार हुए हैं किंतु समस्या का समूल नाश नहीं हुआ है। इस पर अभी बहुत किया जाना शेष है।